वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय
कोटा

एम.जे.एम.सी. 4
जनसंचार के सिद्धांत
(Principles of Mass Communication)

जनसंचार के सिद्धांत- 4

पत्रकारिता एवं जनसंचार स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम
(Master of Journalism & Mass Communication)

जनसंचार के सिद्धान्त

संचार के नए आयाम एवं सूचना प्रौद्योगिकी
जनसंचार एवं संस्कृति

4

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय
कोटा

पत्रकारिता एवं जनसंचार
स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम

जनसंचार के सिद्धान्त-4

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

- **प्रो. जी.एस.एल. देवड़ा**
  कुलपति
  कोटा खुला विश्वविद्यालय
  कोटा
  (अध्यक्ष समिति)
- **डॉ. अब्दुल वहीद खान**
  निदेशक (विकास एवं प्रशिक्षण)
  कॉमनवेल्थ सेण्टर ऑफ लर्निंग 1285 ब्राइवे
  सूट 600, वैंकवर (कनाडा)
- **राधेश्याम शर्मा**
  पूर्व-महानिदेशक
  माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता
  विश्वविद्यालय, भोपाल(म. प्र.)
- **डॉ. ओ.पी. केजरीवाल**
  निदेशक, नेहरू मेमोरियल म्यूजियम एण्ड लाइब्रेरी
  तीन मूर्ति भवन, नई दिल्ली
- **प्रो. ए.के. बनर्जी**
  पूर्व-अध्यक्ष
  पत्रकारिता विभाग
  बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय
  वाराणसी
- **प्रो. जे.एस. यादव**
  निदेशक
  भारतीय जनसंचार संस्थान
  नई दिल्ली
- **डॉ. भंवर सुराणा**
  ब्यूरो चीफ/ विशेष संवाददाता
  दैनिक हिंदुस्तान
  जयपुर
- **डॉ. रमेश जैन**
  अध्यक्ष-जनसंचार विभाग
  कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

संयोजक

डॉ. रमेश जैन- अध्यक्ष, जनसंचार विभाग
कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पाठ-संपादक एवं भाषा-संपादक

पाठ-संपादक
डॉ. रमेश जैन
अध्यक्ष, जनसंचार विभाग
कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

भाषा-संपादक
डॉ. विष्णु पंकज
वरिष्ठ साहित्यकार-पत्रकार
जयपुर

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.(डॉ.) नरेश दाधीच	**प्रो.(डॉ.)एम.के. घड़ोलिया**	**योगेन्द्र गोयल**
कुलपति	निदेशक(अकादमिक)	प्रभारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	**संकाय विभाग**	**पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग**

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

उत्पादन - अप्रैल 2012

सर्वाधिकार सुरक्षित : इस सामग्री के किसी भी अंश की वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अथवा मिमियोग्राफी (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है| कुलसचिव व.म.खु.वि. कोटा द्वारा वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.) के लिये मुद्रित एवं प्रकाशित ।

पाठ लेखक

1. **डॉ. जवरीमल पारख**
   रीडर, हिन्दी विभाग
   इन्दिरा गांधी मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
2. **डॉ. पवन अग्रवाल**
   हिन्दी विभाग
   लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
3. **महेश्वरदयालु गंगवार**
   वरिष्ठ पत्रकार
   संयुक्त सचिव, नेशनल यूनियन ऑफ जर्नलिस्ट (इंडिया)
   नई दिल्ली
4. **डॉ. मुक्तिनाथ झा**
   वाराणसी
5. **प्रतुल अथइया**
   स्वतंत्र पत्रकार
   मंडावा (राजस्थान)
6. **डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ**
   सहआचार्य-हिन्दी विभाग
   सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर
7. **डॉ. रमेश जैन**
   अध्यक्ष, जनसंचार विभाग
   कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

खण्ड एवं इकाई परिचय

खण्ड परिचय

जनसंचार के सिद्धान्त-4 खण्ड में तीन इकाइयां है । ये इकाइयां है-1 संचार के नए आयाम एवं नई सूचना प्रौद्योगिकी, 2. जनसंचार एवं संस्कृति, 3. भारत की जनसंचार नीति ।

ये तीनों इकाइयां अपने विषय की मत्वपूर्ण इकाई है। 'जनसंचार' एवं नई सूचना प्रौद्योगिक में संचार के आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं सास्कृतिक आयामों की विवेचना की गई । 'जनसंचार' एवं सांस्कृतिकी आयामों की विवेचना की गई है। 'जनसंचार एवं संस्कृति' में दोनों के अन्तः संबंधों की विवेचना की गई है। 'भारत की जनसंचार नीति' में 'जनसंचार संबंधी नीतियां' दी गई है।

इकाई परिचय

इकाई 13 - संचार के नए आयाम एवं नई सूचना प्रौद्योगिक की है । इस इकाई में नई संचार प्रौद्योगिकी, नई सूचना प्रौद्योगिकी एवं विभिन्न माध्यम, संचार के आर्थिक आयाम, संचार के राजनीतिक आयाम , संचार के सामाजिक आयाम, संचार के सांस्कृतिक आयाम आदि की विस्तृत विवेचना की गई है।

इकाई 14 - संनसंचार एवं संस्कृति से संबद्ध है। प्रस्तुत इकाई में संस्कृति की अवधारणा, जनसंचार और संस्कृति का अन्तः संबंध, भारत में जनसंचार की परम्परा, प्राचीन मध्य तथा आधुनिक काल में जनसंचार और जन संस्कृति उद्योग, संस्कृति का विरूपीकरण आदि बिन्दुओं पर विस्तार से जानकारी दी गई है।

इकाई 15 - 'भारत की जनसंचार नीति' की है। इस इकाई में नीतिगत प्रावधानों की जरूरत, सूचना और अभिव्यक्ति का अधिकार, सूचनाओं को नियमित करने का प्रभाव, जनसंचार के वैधानिक प्रावधान, जनसंचार संबंधी नीतियां, जनसंचार संबंधी आचार संहिताए, जनसंचार से संबंधीत नीतियों का वैश्विक संदर्भ आदि के बारे में व्यापक प्रकाश डाला गया है।

आशा की जाती है कि तीनों इकाइयां आपके किए उपयोगी एवं मार्गदर्शक होंगी ।

पाठ्यक्रम - चतुर्थ
खण्ड- चतुर्थ

4

इकाई 13 संचार के नए आयाम एवं नई सूचना प्रौद्योगिकी	7–31
इकाई 14 जनसंचार एवं संस्कृति	32–51
इकाई 15 भारत की जनसंचार नीति	52–70

इकाई 13 संचार के नए आयाम एवं नई सूचना प्रौद्योगिकी

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य
13.1 प्रस्तावना
13.2 नई संचार प्रौद्योगिकी
13.3 नई सूचना प्रौद्योगिकी एवं विभिन्न माध्यम
13.4 संचार के आर्थिक आयाम
13.5 संचार के राजनीतिक आयाम
13.6 संचार के सामाजिक आयाम
13.7 संचार के सांस्कृतिक आयाम
13.8 सारांश
13.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें
13.10 निबन्धात्मक प्रश्न

13.0 उद्देश्य

पत्रकारिता एवं जनसंचार स्नातकोत्तर उपाधि से संबंधित 'जनसंचार के सिद्धांत-4' की यह तेरहवीं इकाई है । इस इकाई में आप संचार के नए आयामों तथा नई सूचना प्रौद्योगिकी का अध्ययन करेंगे । इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- संचार की नई प्रौद्योगिकी तथा नई सूचना प्रौद्योगिकी को जान सकेंगे ।
- संचार के क्षेत्र में होने वाले नवीनतम परिवर्तनों की रोशनी में उन आर्थिक पहलुओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे
- जिन्होंने अर्थव्यवस्थाओं पर निर्णायक असर डाला है ।
- संचार के आधुनिकतम परिवर्तनों का राजनीतिक कारकों पर प्रभाव की समीक्षा कर सकेंगे ।
- संचार के नए परिवर्तनों के समाज पर पड़ने वाले विभिन्न प्रभावों का विवेचन कर सकेंगे ।
- संचार के नवीनतम परिवर्तनों का सांस्कृतिक परिदृश्य पर होने वाले प्रभाव की प्रक्रिया का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- नई सूचना प्रौद्योगिकी के विभिन्न माध्यमों से परिचित हो सकेंगे ।

13.1 प्रस्तावना

'संचार के नए आयाम एवं नई सूचना प्रौद्योगिकी' नामक इस इकाई से पूर्व की तीन पाठ्य-पुस्तिकाओं में आपने जनसंचार के विभिन्न सिद्धांतों का अध्ययन किया था । जनसंचार ऐसा क्षेत्र है जिसका भारत के विश्वविद्यालयों (जनसंचार विभाग) में अध्ययन पिछले लगभग दो दशक में आरंभ हुआ है । जनसंचार के क्षेत्र का महत्व पिछले दो दशक में बहुत तेजी से बढ़ा है । इसका कारण यह है कि सन 1980 के बाद से जनसंचार के प्रसार की तरफ सरकारों का खासतौर पर ध्यान गया। इसकी शुरुआत टेलीविजन प्रसारण के विस्तार से हुई जब देश के कोने-कोने में रिले केन्द्र स्थापित किए गए । इसके बाद कम्प्यूटर का तेजी से विस्तार हुआ । दूरसंचार व्यवस्था का भी विस्तार हुआ और गांव-गांव में टेलीफोन की सुविधा ही नहीं पहुंच गई बल्कि दूरदराज के गांवों से दुनिया के किसी

भी कोने से टेलीफोन द्वारा सीधे बातचीत करने की सुविधा ही भी उपलब्ध भी हो गई । कम्प्यूटर ने अब तक उपलब्ध सभी माध्यमों को एक ही स्थान पर उपलब्ध करा दिया । कम्प्यूटर पर मोडेम लगाकर और उसे टेलीफोन से जोड़कर व्यक्ति इंटरनेट के जरिए दुनिया के किसी भी कोने से मुद्रित, दृश्य और श्रव्य संदेशों का आदान-प्रदान कर सकता है । यह संचार के क्षेत्र में एक बहुत बड़ी छलांग थी । खास बात यह है कि यह सुविधा बहुत महंगी भी नहीं है और इसका उपयोग करना आसान भी है । संचार के क्षेत्र में इन परिवर्तनों से भारत भी अछूता नहीं है । यहां भी इन नए संचार माध्यमों का तेजी से प्रवेश ही नहीं हो रहा है बल्कि ये माध्यम महानगरों से शहरों और कस्बों से होते हुए गांवों तक पहुंचने लगे हैं । इसका लाभ आम आदमी भी कैसे ले सकता है यह आजकल संचार से जुड़े लोगों के विचार का मुख्य मुद्दा हो गया है ।

जनसंचार के क्षेत्र में होने वाले तकनीकी परिवर्तनों ने हमारे आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों को तेजी से प्रभावित करना शुरू कर दिया है । इसका परिणाम क्या होगा? क्या इससे भारत तेजी से विकास की ओर बढ़ सकेगा? क्या इससे देश में व्याप्त गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा और असमानता को मिटाने में मदद मिलेगी? आज अमरीका और यूरोप में इस नई संचार के कारण एक नए तरह की निरक्षरता बढ़ने की बात की जा रही है, एक नई तरह की सामाजिक असुरक्षा का खतरा बढ़ रहा है और विद्वानों का एक वर्ग यह भी मान रहा है कि इससे न सिर्फ आर्थिक विषमता में बढ़ोतरी हो रही है बल्कि लोगों के बुनियादी लोकतांत्रिक अधिकारों पर हमला भी हो रहा है । जनसंचार में होने वाले परिवर्तनों ने हमारे सामूहिक और वैयक्तिक जीवन पर कितना और किस तरह का प्रभाव डाला है, इस पर भी इस इकाई में विचार किया गया है । संचार के विभिन्न पहलुओं पर विचार करते हुए ही हम संचार के नए आयामों को समझ सकते हैं ।

13.2 नई संचार प्रौद्योगिकी

संचार के नए आयामों के बारे में विचार करने से पूर्व संचार की नई प्रौद्योगिकी के बारे में जानना जरूरी है, जिनके कारण संचार के ये नए आयाम सामने आए हैं । संचार की प्रौद्योगिकी के इतिहास को हम तीन कालखंडों में बांट सकते हैं-

1. प्राक् आधुनिक युग की संचार प्रौद्योगिकी;
2. आधुनिक युग की संचार प्रौद्योगिकी और
3. उत्तर आधुनिक युग की संचार प्रौद्योगिकी ।

13.2.1. प्राक् आधुनिक युग की संचार प्रौद्योगिकी

प्राक् आधुनिक युग की संचार प्रौद्योगिकी के अंतर्गत हम उन गुफा चित्रों का उल्लेख कर सकते है जिनके माध्यम से पाषाण कालीन मनुष्य आगे आनेवाली पीढ़ियों तक अपने समय के बारे में सूचनाएं प्रेषित करने में कामयाब हुआ । दूसरा महत्वपूर्ण माध्यम भाषा की खोज है, जो आज भी सूचना और संचार का आधारभूत और सशक्त माध्यम कहा जा सकता है । लिपि की खोज ने भाषा को लिखना सम्भव बनाया, जिसके कारण लोगों के लिए यह संभव हुआ कि वे संदेशों को लिखकर आगे आने वाले सैकड़ों और हजारों साल के लिए सुरक्षित रख सके । तीसरा माध्यम मुद्रण का काम संपन्न किया गया था । मुवेबल ब्लॉक ऐसे सांचे होते थे जिन पर अक्षर या शब्द या वाक्य खुदे होते थे और जिन पर

स्याही लगाकर छापा जाता था | बाद में इसी पद्धति में सुधारकर प्रिंटिंग प्रेस की स्थापना की गई । प्राक् आधुनिक युग में सूचनाओं के प्रेषण के लिए ऐसी व्यवस्थाएं सामने आई जिन्हें डाक व्यवस्था का पूर्व रूप कहा जा सकता है । यात्रा करनेवाले लोगों के साथ संदेश भेजना, पक्षियों के गले में संदेश (पत्र) बांधकर भेजना । हुंडी की व्यवस्था एक तरह बैंकिंग थी जिसमें आप एक जगह पैसे देकर दूसरी जगह प्राप्त कर सकते थे ।

13.2.2 आधुनिक युग की संचार प्रौद्योगिकी

आधुनिक युग से हम औद्योगिक समाज भी कह सकते हैं, संचार के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तनों का वाहक बना। इस युग में सूचना टेक्नोलॉजी का विकास स्वतंत्र रूप से नहीं हुआ । इनका संबंध दूसरे आविष्कारों से है, जिसने उत्पादन के साधनों में बुनियादी किस्म के परिवर्तनों की शुरुआत की । उत्पादनों के इन साधनों में ऊर्जा और यांत्रिक बल की उत्पत्ति की नई प्रौद्योगिकी शामिल है । विद्युत और भाप से उत्पन्न ऊर्जा की खोज ने परिवहन और संचार के क्षेत्र में नए माध्यमों का मार्ग प्रशस्त किया । उदाहरण के लिए भाप के इंजन के कारण रेल का आविष्कार हुआ । पानी के जहाज में भी भाप के इंजन का इस्तेमाल होने लगा । इसके कारण यातायात के नए साधन सामने आए जो पहले की तुलना में ज्यादा तीव्र गति से चलने में सक्षम थे । साथ ही, वे पहले से ज्यादा बड़ी तादाद में लोगों और माल को ढो सकते थे । इसने डाक व्यवस्था को व्यापक बनाने के लिए जरिया मुहैया कराया । औद्योगिक समाज में संचार प्रौद्योगिकी में जो सबसे बड़ा परिवर्तन हुआ वह यह था कि पहली बार संदेश और संदेश के माध्यम में अलगाव पैदा हुआ । अभी तक संदेश को उसी रूप में भेजा जाता था । लिखकर, चित्र बनाकर या मौखिक रूप में । लेकिन अब ऐसी प्रौद्योगिकी खोजी गई जिसमें भेजा गया संदेश उसी रूप में प्रेषित नहीं होता था, वह संकेतों की भाषा में प्रेषित किया जाने लगा। यानी अब संदेश को ऐसे माध्यम द्वारा भेजा जाने लगा था जो संदेश को कोड में बदल देता था और वह कोड बाद में संदेश प्राप्त करने वाले के पास डिकोड होकर प्राप्त होता था । इसके लिए विद्युत की चुंबकीय शक्ति का प्रयोग किया गया । इस शक्ति को पहले तारों के द्वारा और बाद में बिना तार के तरंगों के द्वारा भेजा जाना और ग्रहण किया जाना संभव हुआ । तार, टेलीफोन, रेडियो, सिनेमा और टेलीविजन के द्वारा संदेशों का मुद्रित, श्रव्य और दृश्य रूप में संप्रेषण आधुनिक प्रौद्योगिकी की प्रमुख देन है ।

इस आधुनिक प्रौद्योगिकी में नया परिवर्तन तब हुआ जब कम्प्यूटर, उपग्रह प्रणाली और डिजिटल प्रणाली की खोज करली गई । कृत्रिम उपग्रह प्रणाली और कम्प्यूटर के कारण संचार मीडिया का विस्तार भूमंडलीय स्तर पर हो गया है। आज संचार को कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है जिसका विस्तार भूमंडलीय स्तर पर न हो रहा हो । इसको संभव बनाया है उपग्रह संचार प्रणाली ने । उपग्रह संचार प्रणाली ने ही केबल टीवी के लिए मार्ग प्रशस्त किया है । केबल टीवी का तात्पर्य यह है कि डिश एंटिना के माध्यम से उन टीवी चैनलों के प्रसारण को भी संभव बनाना जो पहले सिर्फ एक सीमित क्षेत्र में ही प्रसारित होते थे। डिश एंटीना में अलग-अलग चैनल के लिए अलग-अलग ट्रांसपोंडर लगे होते हैं जो उनके प्रसारण को एक सीमित क्षेत्र में संभव बनाते हैं केबल टीवी की इस नई टेक्नालॉजी के कारण देश-विदेश के उन चैनलों का ऐसे स्थानों पर प्रसारण होने लगा जहां तक दूरदर्शन भी नहीं पहुंचा था । यहां यह नोट करना भी जरूरी है कि केबल टीवी की यह नई तकनीक ज्यादा महंगी भी नहीं है और किसी भी स्थान पर इसे स्थापित किया जा सकता है । अब केबल टीवी से आगे की तकनीक का भी

आविर्भाव हो चुका है । डीटीएच यानी डाइरेक्ट टु होम तकनीक के आने के बाद केबल टीवी पर निर्भरता भी समाप्त होने वाली है । तब कोई भी व्यक्ति मनचाहे टीवी चैनलों को डीटीएच के जरिए आसानी से हासिल कर सकेगा । कुछ नियमन के साथ भारत सरकार ने हाल में डीटीएच तकनीक के भारत में प्रवेश की अनुमति दे दी है । हालांकि इसकी कामयाबी बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करेगी कि यह आर्थिक रूप से उपभोक्ताओं की पहुंच के अधीन होगी या नहीं।

13.2.3 उत्तर आधुनिक युग की संचार प्रौद्योगिकी

दूसरा काम बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में यह हुआ कि ऑडियो और वीडियो के क्षेत्र में पुनरूत्पादन की ऐसी प्रौद्योगिकी का विकास हुआ है जिसके कारण किसी भी ऑडियो और वीडियो कार्यक्रम को आसानी से लाखों की संख्या में बारबार पुनरुत्पादित किया जा सकता है । छोटे से कैसेट में लंबे टेप पर आवाज को अंकित किया जाता है और जिसे कैसेट प्लेयर पर बजाया जा सकता है । कैसेट पर आवाज को रिकार्ड करने की यह तकनीक आसान है और कोई भी व्यक्ति इसे अंजाम दे सकता है जिसके पास कैसेट रिकार्डर हो । ऑडियो कैसेट की कीमत इतनी कम होती है कि निम्न मध्यवर्ग का व्यक्ति भी इसे आसानी से अपने पास रख सकता है । इसी तरह वीडियो कैसेट पर दृश्यों को रिकार्ड किया जा सकता है और प्ले भी किया जा सकता है, लेकिन वीडियो कैसेट रिकार्डर और प्लेयर महंगे होते हैं और संपन्न मध्यवर्ग ही इन्हें रख सकते हैं । किसी भी ऑडियो या वीडियो कार्यक्रम की हजारों प्रतियां बनाई और उन्हें बेची जा सकती है । अब इस क्षेत्र में भी एक नई तकनीक आ गई है । यह है काम्पेक्ट डिस्क जिसे आम भाषा में सीडी कहा जाता है । सीडी और सीडी-रॉम(काम्पेक्ट डिस्क-रीड ऑन मेमोरी) का संबंध नई मल्टी मीडिया तकनीक से है जिसमें डिजिटल प्रणाली के द्वारा सूचनाओं को अंकित और भंडारित किया जाता है । सीडी में आवाज और ध्वनियों को रिकार्ड किया जाता है जिसे सीडी प्लेयर पर बजाया जा सकता है, जबकि सीडी-रॉम में आवाज और बिंब दोनों को अंकित किया जा सकता है । सीडी और सीडी-रॉम दोनों का प्रयोग ऐसे कम्पयूटर के माध्यम से भी किया जा सकता है जिसमें मल्टी मीडिया की सुविधा है । मल्टी मीडिया कम्पयूटर पर उपलब्ध वे तकनीकी सुविधाएं हैं जिनके कारण कोई भी व्यक्ति उनका उपयोग बहुत तरह के संचार और सूचना माध्यमों के लिए कर सकता है । इसके लिए टेलीफोन के माध्यम का प्रयोग किया जाता है । टेलीफोन के तार से सिर्फ आवाज ही नहीं बल्कि दृश्य रूपों का भी संप्रेषण संभव है और वह भी दुतरफा ।

हाल के वर्षों में सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण विकास डिजिटल टीवी प्रणाली है जो सैकड़ों चैनलों को उपलब्ध करा सकता है । कृत्रिम उपग्रहों से यह डिजिटल प्रणाली संभव हुई है और दुनिया के लगभग सभी टीवी चैनल अंतत: डिजिटल हो जाएंगे । यह निश्चित है डिजिटल टेलिविजन ने तकनीकी गुणवत्ता में वृद्धि की है, उत्पादन लागत कम हुई है, और चैनलों की संख्या में बेतहाशा बढ़ोतरी संभव हो गई है । अगर घरेलू डिश एंटिना (डीटीएच) के जरिये प्रसारण की शुरुआत हिन्दुस्तान में भी हो जाती है तो टेलिविजन पर दुनिया के लगभग सभी चैनलों को देखना संभव हो जाएगा । यह और बात है कि किसी के लिए भी इतने चैनलों को देखना मुमकिन नहीं है । अंतत: लोग आठ-दस चैनल के बीच ही अपनी पसंद तय करते हैं ।

इतना ही महत्वपूर्ण है इंटरनेट जो एक ऐसा मंच प्रदान करता है जिसका उपयोग कोई भी कर सकता है । इसका संबंध भी डिजिटल और सेटेलाइट टैक्नोलॉजी से है । इस प्रौद्योगिकी के माध्यम से सब तरह की सूचनाओं और आकड़ों को विशाल पैमाने पर सुरक्षित रखना और उन्हें किसी भी समय

और कहीं भी संप्रेषित करना संभव हो सका है । डिजिटल ने कम्प्यूटर की भाषा को भी बदल दिया है । उसने रेडियो, टेलीविजन और फिल्म के उत्पादन और वितरण को पूरी तरह से अपने अधिकार में ले लिया है । यहां तक कि सूचना और आकड़ों के सभी रूपों को अब अंतरपरिवर्तनीय डिजिटल बिट में उत्पादित और भंडारित करना मुमकिन हो सकेगा । जब डिजिटल संचार उपग्रह संचार और फाइबर ऑप्टिक वायरड संचार नेटवर्क के साथ जुड़ जाता है तो वह सूचना सुपर हाइवे या भूमंडलीय सूचना इंफ्रास्ट्रक्चर में तब्दील हो जाता है। जिसके जरिए कोई भी व्यक्ति तत्काल सभी तरह के डाटा को भूमंडलीय स्तर पर उपलब्ध कर सकता है और अपने निजी कम्प्यूटर के माध्यम से किसी के साथ संप्रेषण कायम कर सकता है । (राबर्ट मेक्वेस्ने, दि ग्लोबल मीडिया, पृ. 106) यह सूचना और संचार के क्षेत्र में क्रांति से कम नहीं है । खास बात यह भी है कि यह बहुत कम खर्चीला है । मसलन, इस मामले को इस तरह देखें । डाक व्यवस्था में समाचार भेजने के लिए भारत में पोस्टकार्ड सबसे सस्ता माध्यम है। लेकिन इंटरनेट के माध्यम से ई-मेल के जरिये भेजे गए समाचार पर उतना ही खर्च आता है जितना कि एक लोकल कॉल पर । भारत में इसकी कीमत एक रुपये से कम है । पोस्टकार्ड की तुलना में ई-मेल बहुत जल्दी पहुंचता है । यानीकि जिस समय ई-मेल भेजा जाता है, ठीक उसी समय उसे प्राप्त किया जा सकता है । उसको दुनिया के किसी भी हिस्से में भेजा सकता है और खर्च में अंतर नहीं आता और पोस्टकार्ड से ज्यादा मात्रा में संदेश भेजा जा सकता है । इसी प्रकार सौ से ज्यादा चैनल के टीवी ने दुनिया भर के कार्यक्रमों को घर बैठे उपलब्ध करा दिया है । व्यक्ति छोटे से टीवी सेट के जरिए सारी दुनिया के सूचना, शिक्षा और मनोरंजन कार्यक्रमों का रसास्वादन ले सकता है ।

संचार के एक प्रमुख क्षेत्र दूरसंचार में भी प्रौद्योगिकी ने समाज पर जबर्दस्त प्रभाव डाला है। इस रूपांतरण को निकोलास बरान के शब्दों में इस तरह प्रस्तुत कर सकते हैं, “आज ज्यादातर दूरसंचार, मसलन टेलीफोन से बातचीत और रेडियो व टेलीविजन प्रसारणों में, एनलोग सिग्नल के जरिए संचार होता है । एनलोग सिग्नल का अर्थ है वह प्राकृतिक तरंग रूप, जोकि धीरे-धीरे अधिकतम तथा न्यूनतम सघनता के बीच आगे-पीछे गति करती है, एक एनॉलगो तरंग का रूप होती है । बहरहाल, इस एनॉलोग परिघटना को डिजिटल फार्मेट सरल चालू / बाधित (ऑन /ऑफ) सिग्नल के रूप में होता है यानी सिग्नल दो में से एक अवस्था में होता है... चालू या बाधित ।

जैसे-जैसे कम्प्यूटर ज्यादा शक्तिशाली हुए हैं और सॉफ्टवेयर ज्यादा उन्नत हुए हैं अब वह यह संभव हो गया है कि फोटोग्राफों से लेकर फीचर फिल्मों तक, लगभग हर तरह की सूचनाओं को, डिजिटल फार्मेट में बदल दिया जाए । और इस सब की खासियत यह है कि जब एक बार ध्वनि या छवियों को डिजिटल फार्मेट में प्रस्तुत कर दिया जाता है, उन्हें दूसरी किसी भी डिजिटल सामग्री की तरह, कम्प्यूटर के जरिए परिचालित किया जा सकता है या उन्हें कम्प्यूटर के संजाल के जरिए संप्रेषित किया जा सकता है । इस तरह कम्पयूटर की ध्वनि तथा प्रकाश को परिचालित करने में समर्थ होना ही 'डिजिटल युग' का आधार है (कैपिटलिज्म एंड इनफोर्मेशन एज, पृ. 124) । संचार के नए आयाम के बारे में बातचीत करते हुए इन प्रौद्योगिकीय परिवर्तनों को नजर में रखना जरूरी है । आगे हम इस बात को ध्यान में रखते हुए आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पहलुओं के बारे में बातचीत करेंगे ।

13.3 नई सूचना प्रौद्योगिकी एवं विभिन्न माध्यम

प्रेस

भारत में सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में प्रगति की दिशा को यहां प्रगट किया गया है । इससे विभिन्न माध्यमों में नई सूचना प्रौद्योगिकी के उपयोग के बारे में स्पष्ट जानकारी मिलती है । नई संचार प्रणालियों को विभिन्न माध्यमों ने किस गति से ग्रहण किया यह भी ज्ञात होता है । भारत में प्रारम्भ में नई सूचना प्रौद्योगिकी के ग्रहण करने की रफ्तार धीमी थी लेकिन वह निरंतर बढ़ने की ओर है । 1950 से 2000 तक के पचास साल में प्रेस, रेडियो एवं फिल्म की पहुंच 15 प्रतिशत भारतीय आबादी से बढ़कर 65 प्रतिशत पर पहुंच गई है । फिर भी भारत की 35 प्रतिशत आबादी भारतीय संचार क्रांति से अछूती है । भारत में विभिन्न संचार माध्यमों के अपनाये जाने की गति भिन्न-भिन्न है ।

1970 के दशक में पत्रिकाओं की बाढ़ आई । 'इण्डिया टुडे' जैसी नई पत्रिकाओं से पाठकों की समाचारों के सन्दर्भ में अधूरी आकांक्षाएं पूरी होने लगीं । 1975 में आपात्काल में पत्रों की स्वतन्त्रता को धक्का लगा । लेकिन, उसके बाद मुद्रण तकनीक एवं रंगीन छपाई ने इस दिशा में प्रगति की । 1980 एंव 1990 के दशक में टेलीविजन के आने के बाद समाचार पत्रों का रंग रूप बदला । राजनीति से ध्यान हटकर जीवनशैली, व्यवसाय एवं मनोरंजन की ओर भी पत्रों का झुकाव होने लगा । समाचार पत्र समूहों ने अपने यहां टेलीविजन स्टूडियो, टीवी. कार्यक्रमों का निर्माण भी शुरू किया गया। साथ ही प्रिन्ट मीडिया से इलेक्ट्रोनिक मीडिया की ओर अग्रसर हुए ।

रेडियो

भारत में रेडियो का समय 1923 में ब्रिटिश उपनिवेशवादी शासन में शुरू हुआ । स्वतन्त्रता के समय बड़े महानगरों में छह रेडियो स्टेशन थे । सन् 2000 तक यह परिदृश्य इतना बदला कि भारत के दो तिहाई घरों तक अर्थात् 110 मिलियन घरों तक इसकी पहुंच हो गई ।

भारतीय स्थितियों में रेडियो एक प्रभावशाली माध्यम सिद्ध हुआ । यह असाक्षर लोगों तक भी पहुंचा । टेलीविजन एवं फिल्म से सस्ता होने के कारण भी यह लोकप्रिय हुआ । स्थानीय रेडियो स्टेशन भी महत्वपूर्ण साबित हुए । 20वीं सदी के अंत तक रेडिया सर्वाधिक प्रभावशाली माध्यम रहा जिसकी ग्रामीणों एवं शहरी गरीबों तक पहुंच हो गई थी । टी.वी. के प्रसार ने भारत में रेडियो को पीछे की ओर धकेला है इसकी अहमियत आज भी बनी हुई है ।

टेलीविजन

दृश्य माध्यम के रूप में फिल्मों का एक लम्बा इतिहास । भारत फिल्मों के प्रति अति रुझान रखने के लिए दुनिया में जाना जाता है । 'बॉलीवुड' में दुनिया में सालाना सर्वाधिक फिल्मों का निर्माण होता है । फिर भी फिल्मों ने भारत की विकास प्रक्रिया में कोई महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह नहीं किया।

भारत में टेलीविजन का आरम्भ 1959 में हुआ । यह शुरुआत यूनेस्को के सहयोग से एक शैक्षणिक परियोजना के रूप में थीं । 1960 के दशक में धीमी दफ्तार से टी.वी. आगे बढ़ा । रेडियो प्रसारणों की तरह ही भारत में टी.वी. का सुर ब्रॉडकास्टिंग के रूप में बी.बी.सी के मॉडल पर आधारित था । भारत ने इस सन्दर्भ में अमेरिका की निजी एवं व्यावसायिक शैली को नहीं अपनाया । 1970 के दशक में सैटेलाईट टेलीविजन एक्सपेरिमेण्ट (Site) का छह राज्यों के 2400 गांवों तक प्रसारण के साथ टी.वी. दर्शकों की संख्या में विस्तार होने लगा । अमेरिका सेटेलाईट ए.टी.एस. 6 के द्वारा ग्रामीण

कार्यक्रम प्रसारित होने लगे । ये शैक्षणिक कार्यक्रम ग्रामीण भारत के विकास के लिए थे । श्रीमती इन्दिरा गांधी ने सैटेलाईट आधारित टी.वी. के विस्तार में योग दिया । एशियन गेम्स- 1982 के समय भारत में रंगीन टी.वी. को एक महत्वपूर्ण हथियार मानकर इसके विस्तार के प्रयास किए गए, लेकिन सन् 2000 तक आते-आते यह दिशा ही बदल गई । टी.वी. के विकास के सन्दर्भ में क्षमता का उपयोग अधूरा रह गया और भुला दिया गया । यह मनोरंजन की ओर झुक गया। भारत में लगभग 50 प्रतिशत लोग रोज टेलीविजन देखते हैं ।

केबल एवं निजी टी.वी. नेटवर्क्स

1980 के दशक में दूरदर्शन पर कुछ मनोरंजनात्मक सीरियल लोकप्रिय हुए । टी.वी. की ओर रुझान बढ़ा । दूरदर्शन के शैक्षणिक कार्यक्रमों के बजाय मनोरंजन के कार्यक्रमों के विकल्प की ओर लोगों का ध्यान गया । इस विकल्प को अपनाने तथा नगरीय दर्शकों की जरूरत को पूरा करने के लिए केबल टी.वी. का चलन हुआ । केबल टी.वी. महाराष्ट्र एवं गुजरात में शुरू हुआ । निजी उद्यमियों ने इस ओर प्रयास किये । केन्द्रीय विडियो द्वारा फिल्में एवं सीरियल दिखाने का यह कार्य विदेशी सेटेलाइट चैनल्स की उपलब्धि के कारण 1991-92 में देशभर में फैला । भारत में सरकारी नियन्त्रण वाले दूरदर्शन को ही प्रसारण की अनुमति थी । 1991 में हांगकांग स्थित स्टार टी.वी. नेटवर्क ने बी.बी.सी. के समाचार एवं अन्य समाचार सेटेलाइट के द्वारा भारत में दिखाने आरम्भ किए । यह कार्य खाड़ी युद्ध के समय लोकप्रिय हुआ । अनेक केबल टी.वी. संचालकों ने सेटेलाइट डिसेज खरीदी एवं केबल के द्वारा अनेक चैनलों को जोड़ा, क्योंकि निजी सेटेलाइट चैनल सिंगापुर एवं हांगकांग में स्थित थे, अत: इनको भारत की धरती पर दूरदर्शन के एकाधिकार पर हमला एवं नियमों का उल्लंघन नहीं समझा गया ।

सन् 2000 तक भारत में 40 निजी टी.वी. नेटवर्क काम करने लगे । इसके अलावा निजी नेटवर्क्स जी.टी.वी., स्टार टी.वी., सोनी, सी.एन.एन., बी.बी.सी. एवं अन्य भी संचालन में आये । इस निजी टी.वी. चैनल्स के कार्यक्रमों में विदेशी आयातित मनोरंजनात्मक कार्यक्रम, भारत में निर्मित सीरियल, गेम शो, डाल्क शो, समाचार एवं समासामयिक घटनाओं के कार्यक्रम शामिल थें इसके कार्यक्रमों की उपलब्धि एवं चयन की सुविधा बढ़ी । 1990 के दशक में भारत की मुक्त अर्थव्यवस्था भारतीय बाजार पर अमेरिका एवं अन्य विदेशी संस्थानों के हमले के साथ निजी टी.वी. चैनल्स की भी बाढ़ आई एवं इससे भारतीय समाज में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए ।

दूरसंचार

एक जमाना था जब भारत की टेलीफोन व्यवस्था आलोचना का केन्द्र थी । हर 200 व्यक्तियों के पीछे एक टेलीफोन था । टेलीफोन का उपयोग एक विलासिता माना जाता था । लेकिन 1980 के मध्य से यह परिदृश्य बदलने लगा । आर्थिक, सामाजिक, व्यावसायिक एवं औद्यौगिक विकास के लिए दूरसंचार या टेलीकॉम सेवाओं को आवश्यक माना जाने लगा। राजीव गांधी के प्रधानमंत्री काल में साम पितरोदा (Sdyen pitroda) के नेतृत्व में इस दिशा में उच्च प्रौद्योगिकी की शुरुआत हुई । टेलीफोन सुविधाएं तेजी से बढ़कर गांवों तक पहुंचने लगी ।34 व्यक्तियों के बीच एक टेलीफोन औसत हो गया । डिजिटल स्वचालित एक्सचेंज बने ।

इंटरनेट

1990 के दशक में इंटरनेट की तेजी से प्राप्ति हुई । कम्प्यूटर इससे पहले ही चलन में थे । इससे इंटरनेट के उपयोग ने रफ्तार पकड़ी । भारत में अंग्रेजी के अधिक चलन से भी इस दिशा में योग मिला । कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर में भारतीयों की बढ़ती कुशलता से इंटरनेट का विकास होने लगा । अवधेश प्रसाद सिंह के शब्दों में-केवल मुद्रण, दूरदर्शन, समाचार पत्र और अन्य आधुनिक मीडिया के साधनों से भिन्न इंटरनेट एक ऐसा संचार माध्यम है जिसकी व्यापकता अपरिसीम है । फाइबर आप्टिक लिंक के एक और नए आविष्कार ने इंटरनेट की गति पहले की तुलना में और भी कई गुना बढ़ा दी है और इसकी क्षमता को बहुगणित कर दिया है । इंटरनेट में एक व्यक्ति का एक व्यक्ति के साथ तथा अनेक व्यक्तियों का अनेक व्यक्तियों के साथ एक ही समय विविधरूपेण संपर्क स्थापित होता है । इंटरनेट को वस्तुत: नेटवर्कों का नेटवर्क कहा जाता है जिसका आशय है सूचना तंत्रों के बीच स्थापित संबंधों का एक समेकित तंत्र ।

इंटरनेट इस समय मुख्यत: कम्प्यूटर पर आधारित है और इसके तहत विश्व के लगभग 100 देशों के लाखों कम्प्यूटरों को एक साथ आपस में जोड़ दिया गया है और कम्पयूटर आधारित सूचनाओं के आदान प्रदान का एक व्यापक संजाल खड़ा किया गया है । किन्तु शीघ्र ही यह दूरदर्शन, टेलीफोन आदि माध्यमों से भी जुड़ने वाला है और कई विकसित देशों में उनसे जुड़ भी गया है । इसके तहत एक कम्प्यूटर में संगृहित सूचनाओं और जानकारियों को हजारों मील दूर बैठा व्यक्ति अपने कम्प्यूटर पर उतनी ही आसानी से देख और पढ़ सकता है जितनी आसानी से अपने आस-पास की चीज को ।

इंटरनेट का इतिहास लगभग चार दशक पुराना है । दो महाशक्तियों अमेरिका और रूस के बीच 1960 के दशक में व्यापक स्तर पर चल रहे शीतयुद्ध के दौरान अमेरिका के वैज्ञानिकों ने रूस के नाभिकीय आक्रमणों से अपने रक्षा संस्थानों को बचाने के लिए एक ऐसी पद्धति की खोज की जो उनके रक्षा संबंधों ठिकानों पर आक्रमण होने पर भी कम्प्यूटरों में संग्रहित सूचनाओं को कोई क्षति न पहुंचा सके ।

अमेरिका की पेंटागॉन एडवांस्ड रिसर्च प्रोजेक्ट एजेंसी (ए.आर.पी.ए.) ने 1969 में एआरपीएनेट के रूप में इसकी शुरुआत की थी । इसका मूल उद्देश्य देश के विभिन्न भागों में फैली सैनिक छावनियों के बीच आपसी संपर्क स्थापित करना था। आपसी संवाद के रूप में इंटरनेट के आविष्कार की एक वजह यह भी थी कि इसके द्वारा प्रेषित सूचनाए जहां एक ओर सही होती थी, वहीं गोपनीय भी होती थी । उसमें आकड़ों को छोटे पेकेटों में भेजा जाता था और ये विभिन्न रूटों से अपने गंतव्य पहुंचते थे । पैकेट स्विच्ड नेटवर्क उस केट को उन खतरों से भी बचाता था जो नाभिकीय आक्रमण से उत्पन्न हो सकते थे, क्योंकि नाभिकीय आक्रमण होने पर यदि एक रूट बंद हो जाता जो यह स्वत: दूसरा रूट पकड़ लेता ।

एआरपीएनेट कम्यूटरों को आपस में जोड़ने और डाटा भेजने हेतु विकसित की गई प्रक्रिया को ट्रांसमिशन कंट्रोल प्रोटोकोल/इंटरनेट प्रोटोकोल (टीपीसी/आई.पी) कहा गया । अमेरिका में सैनिक मुख्यालयों में कार्यरत वैज्ञानिकों और इंजीनियरों ने इस एआरपीएनेट का उपयोग रक्षा संबंधी सूचनाओं के आदान प्रदान के लिए भी करना शुरू किया । इसके अगले कथन के रूप में उन्होंने इलेक्ट्रोनिक मेल का तरीका भी विकसित किया जिसे 'ई-मेल' की संज्ञा दी गई । एआरपीएनेट की सुविधाओं को देखते हुए इसका विस्तार भी होने लगा, परन्तु अमेरिकी सरकार ने सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए केवल उन्हीं संस्थाओं को उसके उपयोग की अनुमति दी जिनसे सुरक्षा पर आंच नहीं आती थी । लेकिन धीरे-धीरे

इसका विस्तार होता गया और यह सैनिक संगठनों और रक्षा संस्थाओं के हाथ से निकल कर विभिन्न शैक्षिक और गैर सरकारी संस्थाओं तक पहुंचने लगा ।

इंटरनेट के जन्म के लगभग दस साल बाद अर्थात् 1979 में एक शैक्षिक नेटवर्क 'यूज़नेट न्यूज़' के रूप में उसका पहला सार्वजनिक विस्तार हुआ, पर यह भी सरकारी नियंत्रण के अधीन ही । आठवें दशक के उत्तरार्द्ध में अमेरिकी सरकार ने 'नेशनल साइंस फाउंडेशन' के माध्यम से पांच सुपर कम्प्यूटर केन्द्रों की स्थापना की जो इंटरनेट के प्रमुख संयोजक बिन्दु बने और इनके द्वारा कई विद्यालयों और अनुसंधान प्रयोगशालाओं को आपस में जोड़ा गया ।

इसके फलस्वरूप इंटरनेट से जुड़े कम्पयूटरों की संख्या क्रमश: बढ़ने लगी । 1983 तब लगभग 500 ऐसे कम्प्यूटर बन गए थे जिनसे इंटरनेट की सुविधायें प्राप्त होने लगी थी । इन्हें होस्ट कम्प्यूटर कहा जाता था । लेकिन ये सारे अमेरिका की सरकारी प्रयोगशालाओं और शैक्षिक संस्थानों में थे । परन्तु चार वर्षों की अवधि में ही अर्थात् 1987 तक इनकी संख्या में कई गुना वृद्धि हुई और लगभग 30,000 होस्ट कम्प्यूटर हो गए । फिर तो इनके विस्तार को रोका नहीं जा सका और 1995 तक इनकी संख्या बढ़कर पचास लाख से भी अधिक हो गई ।

अब इंटरनेट आम आदमी की पहुंच में आने लगा । लोग उसकी अपरिसीम क्षमता से परिचित होने लगे । पहले इतनी शीघ्रता, सुविधा और सहजता से जानकारी और सूचनाओं के आदान-प्रदान की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी । हजारों मील दूर बैठे लोग इंटरनेट की सहायता से मिनटों में व्यापक संपर्क स्थापित करने लगे । शैक्षिक संस्थाओं, प्रयोगशालाओं पुस्तकालयों में ऐसे सॉफ्टवेयर बनाए गए जो लोगों को कम्प्यूटर पर सहज जानकारियां उपलब्ध कराने लगे ।

नौवें दशक में सूचना क्रांति के क्षेत्र में एक और नई घटना घटी कि पर्सनल कम्पयूटर लोगों के लिए आम बात हो गई । उसके पहले तक बड़े व्यवसायी निजी कम्प्यूटर या मेन फ्रेम का ही उपयोग करते थे । परन्तु अब माइक्रो कम्प्यूटर का उपयोग करने लगे जिसे डैस्क टाप कम्प्यूटर, पर्सनल कम्प्यूटर या पीसी कहा जाने लगा । यह अपने आप में पूर्ण मशीन थी, परन्तु अलग थलग थी ओर उसके द्वारा दूसरे कम्पयूटर से सम्पर्क स्थापित नहीं किया जा सकता था । इस कमी को दूर करने के लिए स्थानीय नेटवर्क (लोकल एरिया या नेटवर्क) तथा व्यापक नेटवर्क (वाईड एरिया नेटवर्क) की संकल्पना विकसित हुई । इनकी वजह से ई-मेल दैनिक संचार का माध्यम बना ।

कम्प्यूटरों की कीमत में कमी आने के बाद अधिकाधिक लोग इसे खरीदने लगे और इस बात की भी मांग उठी कि उनके कम्प्यूटर को दूसरे कम्प्यूटर से जोड़ा जाए । इसके फलस्वरूप ऑन लाईन सर्विस जैसे टेलीनेट और कम्प्यूटर सर्विस शुरू हुई-बुलेटिन बोर्ड सर्विस जिसके माध्यम से उपयोग कर्ता अपने क्षेत्र के अन्य कम्प्यूटरों से अपने कम्प्यूटर को जोड़ कर सॉफ्टवेयर या सूचनाओं का आदान प्रदन करने लगे ।

शुरू में इन नेटवर्कों में अलग-अलग हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर होते थे और वे आपस में संपर्क स्थापित नहीं कर पाते थे । परन्तु शीघ्र ही टीसीपी/आईपी की मदद से इंटरनेट टेक्नोलॉजी का उपयोग पर्सनल कम्प्यूटरों पर होने लगा । यहीं से आधुनिक इंटरनेट का जन्म हुआ । अब इच्छुक व्यक्ति अपने कम्पयूटर पर इंटरनेट की सुविधायें प्राप्त करने लगे ।

इंटरनेट के क्षेत्र में एक नई उपलब्धि 1990 में वर्ल्ड वाइड वैब (डब्लूडब्लूडब्लू) का आविष्कार था जिससे इंटरनेट के क्षेत्र में एक और क्रांति उपस्थित हुई । यूरोपियन हार्ड इनर्जी फिजिक्स लैब के

भौतिक वैज्ञानिकों द्वारा विकसित किए गए इस नए सॉफ्टवेयर से अब इंटरनेट पर कहीं से भी कोई भी सूचना संगृहित की जाने लगी और नेटवर्क के उपयोग कर्ता तरह-तरह की जानकारियों की खोज दूसरे कम्प्यूटरों पर करके अपने कम्प्यूटर पर उसे संगृहित करने लगे । हजारों मील दूर चल रहे वैज्ञानिक अनुसंधानों को दूसरा वैज्ञानिक अपने कम्प्यूटर पर पढ़ने और देखने लगा । इसके कई गोपनीय चीजें भी सार्वजनिक होने लगी ।

इसके बाद आया ग्राफिक ब्राउजर का युग जिसका आविष्कार मार्क एडीसन नामक एक युवा विद्यार्थी ने किया और मोजाइक के माध्यम से विश्वव्यापी संजाल (डब्लूडब्लूडब्लू) से सूचनाएं प्राप्त की जाने लगी । इस घटना ने इंटरनेट को वैज्ञानिकों की चौहद्दी से निकालकर आम लोगों के दायरे में ला दिया ।

भारत में इंटरनेट का विकास

भारत में इंटरनेट की शुरुआत लगभग 15 वर्ष पहले हुई । सर्वप्रथम सैनिक अनुसंधान नेटवर्क (ई आर नेट) ने शैक्षिक और अनुसंधान क्षेत्रों के लिए उसका उपयोग शुरू किया । ईआरनेट भारत सरकार के इलेक्ट्रोनिक विभाग तथा यूनाईटेड नेशन्स डेवलपमेन्ट प्रोग्राम का एक संयुक्त उपक्रम था । भारत में ईआरनेट को काफी सफलता मिली और इसने अनेक नोडों का परिचालन शुरू किया । लगभग आठ हजार से अधिक वैज्ञानिकों और तकनीशियनों द्वारा इंटरनेट की सुविधाएं प्राप्त की जाने लगी । एनसीएसटी, मुम्बई द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय संपर्क प्राप्त किया जाने लगा ।

15 अगस्त 1995 को विदेश संचार निगम लिमिटेड ने गेटवे इंटरनेट सक्सेस सर्विस (जीआईएएस) की स्थापना वाणिज्यिक तौर पर की । इसने मुम्बई, दिल्ली, चैन्नई, कलकत्ता, बैंगलूर और पुणे में छह इंटरनेट नोड स्थापित किए। उसने अमेरिका, जापान, इटली आदि देशों की इंटरनेट कम्पनियों से समझौता करके देश के प्रमुख शहरों में इंटरनेट की सुविधाएं उपलब्ध करवानी शुरू की । उसके बाद दूरसंचार विभाग ने आईनेट नामक नेटवर्क के द्वारा देश के दूरदराज इलाकों को भी इंटरनेट से भी जोड़ने का भी काम शुरू किया ।

इस समय भारत में तीन सरकारी एजेंसियां इंटरनेट सर्विस प्रोवाइड (आईएसपी) अर्थात् इंटरनेट की सुविधा उपलब्ध कराने का काम कर रही हैं- 1. दूरसंचार विभाग, 2. महानगर टेलीकॉम निगम लिमिटेड तथा 3. विदेश संचार निगम लिमिटेड।

13.4 संचार के आर्थिक आयाम

संचार की नई प्रौद्योगिकी ने जनसंचार के बारे में काफी हद तक बदला है । आज सूचना को पूंजी की तरह एक केंद्रीय सत्ता प्राप्त हो गई । जिस तरह औद्योगिक समाज को पूंजीवादी समाज कहा जाता था उसी तरह आज के समाज को सूचना समाज कहने का आग्रह बढ़ रहा है । भारत में भी इसके प्रबल समर्थकों का एक समूह तैयार हो गया है । सूचना प्रौद्योगिकी के प्रबल समर्थक स्व. दिवांग मेहता का मानना है कि सूचना प्रौद्योगिकी को रोटी, कपड़ा और मकान की तरह एक बुनियादी जरूरत के रूप में लिया जाना चाहिए । क्या वास्तव में सूचना ने पूंजी को विस्थापित कर दिया है? क्या ऐसा कोई समाज अभी तक बन सका है जिसे कि हम सूचना समाज कह सकें और क्या ऐसे समाज में सूचना को वह शक्ति प्राप्त हो सकी है जो कि पूंजी को प्राप्त रही है । जनसंचार के आर्थिक आयाम

पर विचार करते हुए हम जनसंचार माध्यमों के आधुनिकतम विकास से जुड़े आर्थिक पहलू पर विचार करेंगे ।

सूचना प्रौद्योगिकी के आर्थिक पहलू को लेकर कई तरह के अध्ययन सामने आए हैं । आमतौर पर यह तर्क दिया जाता है कि कृषि समाज से औद्योगिक समाज से सूचना समाज में रूपांतरण का स्रोत सामाजिक सत्ता में आया बदलाव है और इसका कारण वह नई प्रौद्योगिकी है, जिसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं । अगर तर्क के लिए यह मान भी लिया जाए कि सत्ता के इस परिवर्तन का स्रोतभूमि के स्वामित्व से पूंजी के स्वामित्व और पूंजी के स्वामित्व से सूचना के स्वामित्व में निहित है । लेकिन तब भी यह सवाल तो अनुत्तरित ही रह जाता है कि इससे समाज की संरचना में क्या बुनियादी फर्क आता हे । जबकि हर परिवर्तन के बाद एक नया अभिजात वर्ग जो पुराने से ही उत्पन्न हुआ है, सत्ता के स्रोत की उपलब्धता को नियंत्रित करता हो । (सीस जे. होमलिंक का लेख 'इज देयर लाइफ आफ्टर दि इन्फोर्मेशन रिवोल्युशन?') माइकल ट्रेबर की पुस्तक : **दि मिथ ऑफ दि इन्फोर्मेशन रिवोल्युशन,** सेज पब्लिकेशन, लंदन, 1986 पृ. 10) सूचना प्रौद्योगिकी सहित नई प्रौद्योगिकी के विकास ने यह भ्रम पैदा किया है कि तकनीकी विकास से मानव जीवन में गुणात्मक परिवर्तन लाया जा सकता है । लेकिन हिरोशिमा और नागासाकी या चेर्नोबिल और भोपाल में हुई घटनाएं यही बताती हैं कि तकनीकी विकास मानव जीवन में बेहतरी लाए यह आवश्यक नहीं है । तकनीकी विकास वस्तुत: कुछ लोगों के लिए आर्थिक लाभ का जरिया होता है । इसलिए वे यह तर्क देते हैं कि तकनीकी प्रगति का मकसद मानवजाति की बेहतरी और लाभ है । इसलिए समाज अपनी मर्जी से यह या वह रास्ता नहीं चुन सकता । मनुष्य के सामने सिर्फ एक ही मार्ग है कि वह तकनीकी विकास को स्वीकार करे और उसे अपनाए । यह तर्क एकतरफा, संख्या केंद्रित प्रौद्योगिकी समाज के निम्नस्तरीय खंडित मानसिकता को छिपाता है । तकनीकी विकास के मसले को इस तरह से पेश करने का उद्देश्य यही है कि ऐसा प्रतीत हो मानों लाखों-लाख लोग इसे स्वीकार करते हों । यह तकनीकी विकास को सार्वजनिक जवाबदेही और आलोचनात्मक-दार्शनिक जांच से भी दूर ले जाता है (**सीस जेस. होमलिंक**, वही, पृ. 12) । इस संदर्भ में इस बात को भी ध्यान में रखने की जरूरत है कि आधुनिकतम सूचना प्रौद्योगिकी का समर्थन करने वाला वर्ग सब तरह की टेक्नोलॉजी के प्रसार में दिलचस्पी नहीं लेता है । वह सिर्फ उसी में दिलचस्पी लेता है जिसमें उसे अकूत व्यापार और मुनाफे की संभावना नजर आती हो । यदि कोई टेक्नोलॉजी जिससे सामाजिक व्यवहार और विकास में सकारात्मक बदलाव आता है लेकिन जिसमें मुनाफे की संभावना बहुत कम है तो यह वर्ग उसके विकास से न सिर्फ दूर रहेगा बल्कि वह राजसत्ता को भी उससे दूर रखने के लिए उकसाएगा।

आज सूचना और संचार क्षेत्र सबसे तीव्र गति से प्रगति करने वाला क्षेत्र है । दुनिया की सबसे बड़ी साठ कंपनियों में से सोलह कंपनियां इसी क्षेत्र की हैं । सूचना संचार क्षेत्र में तीन क्षेत्रों की गणना की जाती हैं, दूरसंचार,कम्प्यूटर और जनमाध्यम । इसमें दूरसंचार का हिस्सा 46 फीसदी, जबकि कम्प्यूटर का 33 फीसदी और जनसंचार माध्यमों का 21 फीसदी है । (दि ग्लोबल मीडिया, पृ. 108) । इस क्षेत्र के विस्तार ने इस बात के लिए देशों को मजबूर किया है कि वे दूरसंचार के क्षेत्र के निजीकरण और विनिमय के लिए रास्ता साफ करें । 1978 में संयुक्त राष्ट्र संघ की एक रिपोर्ट पर 78 देशों ने हस्ताक्षर किए थे, उसमें कहा गया था कि निजी भूमंडलीय संचार नेटवर्क के आविर्भाव से राष्ट्रीय संप्रभुता के आगे प्रश्नाचिह्न लग सकता है (वही, पृ. 110) । लेकिन आज प्राय: सभी देशों में दूरसंचार क्षेत्रों

का तेजी से निजीकरण हो रहा है और बहुराष्ट्रीय कंपनियों या एकाधिकारवादी कंपनियां उनका स्थान ले रही है । भारत भी इन देशों में अग्रणी है ।

जनसंचार माध्यमों के अभूतपूर्व विकास ने भूमंडल को एक गांव में बदल दिया है । यही कारण है कि आज हर कहीं भूमंडलीय आयाम की चर्चा हो रही है । अमरीका के प्रसिद्ध मीडिया विशेषज्ञ राबर्ट मेक्वेस्ने ने जनसंचार के इस भूमंडलीय आयाम पर गंभीरता से विचार किया है । उनका मानना है कि "1990 के दशक का सर्वाधिक महत्वपूर्ण विकास भूमंडलीय व्यापारिक मीडिया प्रणाली का उदय है । इसके लिए नई टेक्नोलॉजी और विनिमय की भूमंडलीय प्रवृत्ति का उपयोग किया गया है । यह भूमंडलीय व्यावसायिक बाजार प्रभुत्वशाली फर्मो के उग्र दांक्पेंचों, नई प्रौद्योगिकी जिसने भूमंडलीय प्रणालियों को लागत-सक्षम बनाया है और विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व व्यापार संगठन और अमरीकी सरकार द्वारा प्रोत्साहित नई उदारवादी आर्थिक नीतियों का परिणाम हैं जिसके कारण भूमंडलीय व्यापारिक मीडिया और दूरसंचार बाजार की नियमन संबंधी बाधाएं खत्म हो रही हैं (**केपिटलज्म एंड दि इनफोर्मेशन एज**, पृ. 20-21) ।" मेक्चेस्ने का मानना है कि मीडिया जगत पर एक अल्पतंत्रीय भूमंडलीय बाजार हावी है और उसने अब बहुत उच्चस्तरीय अवरोधकों का रूप धारण कर लिया है । कहने को राष्ट्रीय बाजार अब भी कायम है लेकिन उनका महत्व कम हो गया है । भूमंडलीय मीडिया बाजार पर ऐसे दस बहुराष्ट्रीय निगमों का वर्चस्व है जिनकी बागडोर अमरीका और दूसरे विकसित देशों के पूंजीपतियों के हाथों में है । मेक्चेस्ने इस प्रवृत्ति को पूंजीवाद से अलग करके नहीं देखते । उनका मानना है कि बीसवीं सदी के ज्यादातर समय में फिल्मों, टेलीविजन कार्यक्रमों, संगीत रिकाडिंग और किताबों के निर्यात बाजार पर पश्चिमी देशों का दबदबा था और उनमें भी अमरीकी फर्मे हावी थीं । लेकिन राष्ट्रीय मीडिया प्रणालियों के ढांचे जैसे रेडियो, टेलीविजन और पत्र-पत्रिकाओं पर राष्ट्रीय स्वामित्व और नियंत्रण बना रहा है । लेकिन नब्बे के दशक के बाद से इसमें लगातार गिरावट आती जा रही है ।

भारत में भी हम इस प्रवृत्ति को देख सकते है जहां नब्बे के दशक से पहले तक रेडियो के प्रसारण पर ऑल इंडिया रेडियो का और टेलीविजन के प्रसारण पर दूरदर्शन का पूरी तरह से नियंत्रण कायम था । आज दूरदर्शन को अपनी जगह बनाने के लिए बड़े निगमों के साथ कड़ा संघर्ष करना पड़ रहा है । पिछले पांच-छह सालों में उसने अपना एक तिहाई से ज्यादा बाजार निजी चैनलों के हाथों खोया है और आगे आने वाले दिनों में इसमें और बढ़ोत्तरी होगी, इसकी ही संभावना अधिक नजर आती है । यही प्रवृत्ति हम संचार के दूसरे क्षेत्रों में भी देख सकते हैं । टेलीफोन के क्षेत्र में भी निजी कंपनियां तेजी से अपने पांव पसार रही है । विडंबना यह है कि उनके प्रसारण के मार्ग में जब भी कोई बाधा उत्पन्न होती है तो सरकारें निजी कंपनियों की मदद के लिए आगे आती हैं जबकि सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों महानगर टेलीफोन निगम लि. और विदेश संचार निगम लि. को कड़ी प्रतिद्वंद्विता का सामना करना पड़ता है ।

जनसंचार के व्यापक प्रसार के कारण यह कहा जा रहा है कि विषमता पर आधारित पूंजीवादी व्यवस्था का खात्मा हो जाएगा । औद्योगिक उत्पादन जिसके साथ केंद्रीकरण, विस्तार, मानकीकरण, संक्रमण और शोषण जैसी बुराइयां मौजूद हैं उनसे भी छुटकारा मिल जाएगा । औद्योगिक उत्पादन के स्थान पर इजारेदारी से मुक्त और विविधताओं वाले बाजार में सेवाओं का आधिपत्य हो जाएगा । क्या वास्तव में ऐसे बदलाव होने की संभावना है? यह सही है कि संचार के क्षेत्र में कई नई खोजें हुई

हैं और उसने ऊर्जा आधारित यांत्रिक पद्धति के स्थान पर डिजिटल आधारित इलेक्ट्रॉनिक पद्धति को लोकप्रिय बनाया है जो कम खर्चीली भी है और जिसमें मानव श्रम भी कम लगता है । लेकिन यह पद्धति हर तरह के उत्पादन के लिए उपयोगी नहीं है । यह उत्पादन की संपूर्ण प्रक्रिया की जगह उसके कुछ चरणों के लिए ही. उपयोगी है । दूसरे, इसका अधिक उपयोग सेवाओं के क्षेत्र में ज्यादा है । इसकी वजह से सेवाओं का विस्तार भी हुआ है और महत्व भी बढ़ा है । लेकिन अधिकांश सेवा क्षेत्र अपने अस्तित्व के लिए औद्योगिक उत्पादन पर निर्भर हैं ।

यह कहना भी सही नहीं है कि जनसंचार की नई प्रौद्योगिकी के कारण एक समानतावादी समाज बनाने में मदद मिलेगी और गरीबी और बेरोजगारी को मिटाया जा सकेगा । इसके विपरीत इसने तीसरी दुनिया के देशों में असमानता को बढ़ाया है और गरीबी और बेरोजगारी में भी बढ़ोतरी की है । यहां तक कि विकसित देशों में भी इस सूचना क्रांति के कारण आर्थिक स्थिति में कोई सकारात्मक परिवर्तन नहीं दिखाई दे रहे हैं सिवाय इसके कि बड़े निगम पहले से ज्यादा शक्तिशाली हो रहे हैं । हम इस संदर्भ मेइंटरनेट का उदाहरण ले सकते हैं । यह एक संपूर्ण जनमाध्यम नहीं तो उसे लगभग संपूर्ण जनमाध्यम माना जा सकता है । यह सस्ता है, आसानी से उपलब्ध है और इसका न सिर्फ कोई भी इस्तेमाल कर सकता है बल्कि बहुत मामूलीसी पूंजी से कोई भी इस पर अपनी वेबसाइट स्थापित कर दुनिया के किसी भी कोने में पहुंच सकता है । लेकिन क्या ऐसा वास्तव में हो रहा है यह होने वाला है? 1999 की युएनडीपी की रिपोर्ट के अनुसार दुनिया की जनसंख्या के 2.4 फीसदी के पास इंटरनेट की सुविधा उपलब्ध है । भारत में 2070 लोगों के बीच सिर्फ एक व्यक्ति इस सुविधा का उपयोग करता है, यानी 1999 तक पूरे देश में लगभग पांच लाख लोग ही इंटरनेट का उपयोग करते थे । एक कम्प्यूटर की कीमत एक बंगलादेशी की आठ साल की औसत आय के बराबर होती है । जबकि वह एक अमरीकी के एक महीने की आय होती है ।

> राबर्ट मेक्चेस्ने ने इंटरनेट की उपलब्धि पर टिप्पणी करते हुए सही लिखा है कि.... अमरीका में ही टेलीविजन कि जगह एक प्रमुख जनमाध्यम बनने में इंटरनेट को कई साल लगेंगे और दूसरे देशों में तो इससे ज्यादा समय लगेगा | अपनी आंतरिक सीमाओं, कम्प्यूटर कि कीमत और उपलब्धता, और बहुत ही जटिल तकनीकी समस्याओं के कारण इंटरनेट के उपयोग को सीमित बनाए रखेगा |

हम हाल ही में यह देख चुके हैं कि भारत सहित कई देशों में अकूत लाभ की आशा में बनाई गई अधिकांश डॉट कॉम कंपनियां देखते-ही-देखते बाजार से बाहर हो गईं क्योंकि वे जितने बड़े पैमाने पर व्यापार की आशा कर रही थीं उसका शतांश भी फलीभूत होता नजर नहीं आया । निष्कर्ष यही है कि जनसंचार के क्षेत्र में भी बहुराष्ट्रीय निगमों का वर्चस्व हावी है और आने वाले दिनों में यह और बढ़ने वाला है 1 लेकिन इससे जनसंचार के आर्थिक पहलूओं का संकट खत्म नहीं होगा । इनमें भी पारस्परिक प्रतिद्वंद्विता और बाजार पर एकाधिकार कायम करने की कोशिशों से उत्पन्न तनावों से बचा नहीं जा सकेगा ।

बहुराष्ट्रीय निगमों के बढ़ते जाल के कारण सूचना प्रौद्योगिकी के व्यापक उपयोग का दबाव तीसरी दुनिया के देशों पर बढ़ रहा है जिसके कारण वे उन क्षेत्रों में भी इसका उपयोग करने के लिए विवश हुए है । जिसके कारण उनके अपने देश में बेरोजगारी में बढ़ोतरी ही हुई है । इस दबाव ने आर्थिक मामलों में देशों के स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमताओं को प्रभावित किया है । देशों को इस बात के लिए

मजबूर किया जा रहा है कि वे बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हितों को पोषित करने वाली नीतियों को स्वीकार करे, चाहे वे नीतियां उन देशों के अपने हित में न हो (हरबर्ट आई, शिलर, दि मिथ ऑफ दि इनफोर्मेशन रिवोल्यूशन, पृ. 23) । संचार के नए आयाम के आर्थिक पहलू पर विचार करते हुए उपर्युक्त बातों को जरूर ध्यान में रखना चाहिए ।

13.5 संचार के राजनीतिक आयाम

संचार के संदर्भ में राजनीति सवाल को दो रूपों में देखा जा सकता है । एक तो, जनसंचार से संबंधित राजनीतिक अर्थव्यवस्था का सवाल । जनसंचार से संबंधित उत्पादों पर वर्चस्व को जानने और समझने में आमतौर पर मुश्किल नहीं होती । लेकिन इसके प्रति यह रवैया भी रहता है कि यह अन्ततः खतरनाक नहीं है । मसलन, भारत जैसे विकासशील देशों में हाल के वर्षों में सूचना प्रौद्योगिकी को, विशेषतः कम्प्यूटरीकरण की प्रक्रिया को, विकास के साथ इस रूप में जोड़कर देखा जा रहा है कि यह हर तरह के समाजों में विकास के लिए अपरिहार्य माध्यम है और इसके वर्चस्व का संबंध विकास से है न कि राजनीति से । वे देश जिन्होंने जनसंचार के क्षेत्र में तकनीकी श्रेष्ठता हासिल कर ली है वे उनकी तुलना में अपना वर्चस्व कायम करने में कामयाब होंगे जो इस क्षेत्र में पिछड़े हुए हैं । इसका वर्गीय और किसी तरह के वर्चस्व से किसी तरह का संबंध नहीं है । लेकिन यह सही नहीं है । कम्प्यूटरीकरण की इस व्यापक प्रक्रिया का संबंध वर्गीय वर्चस्व से बहुत गहरा है और वर्गीय वर्चस्व का सवाल राजनीतिक सवाल है । भारत कंप्यूटर प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में लगभग शून्य पर स्थित है । सॉफ्टवेयर के क्षेत्र में जरूर भारत ने उल्लेखनीय प्रगति की है । लेकिन सॉफ्टवेयर की इस प्रगति का कोई अर्थ नहीं है जब तक कि हार्डवेयर के क्षेत्र में भारत की निर्भरता पूरी तरह से उन विराट विकसित देशों की बहुर्राष्ट्रीय कंपनियों पर निर्भर है जिनकी दिलचस्पी भारत के संतुलित और सर्वांगीण विकास में नहीं बल्कि अपने उत्पादों के लिए यहां के बाजारों का दोहन करने में है । यही कारण है कि वे चाहते हैं कि भारत अपनी प्राथमिकता को इस तरह तय करे कि वह हर उस क्षेत्र में कंप्यूटर और सूचना प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल करे जिसमें विकसित देश भी कर रहे हैं । भले ही गांवों में पीने का पानी और दूसरी बुनियादी जरूरतें पूरी न हों लेकिन वहां टेलिफोन, टेलीविजन और कंप्यूटर जरूर पहुंच जाए । अपने माल को बेचने के लिए वे सूचना प्रौद्योगिकी से ऐसी क्रांति का सब्जबाग दिखा रहे हैं जिससे कि सारी भौतिक, सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं का समाधान हो जाएगा । सूचना क्रांति के प्रबल समर्थक मिकोलस एन. स्जिलागी के अनुसार, 'सूचना क्रांति स्वतः ही राजनीतिक व्यवस्था को बदल देगी' । कंप्यूटर नेटवर्क का व्यवसायीकरण ऐसी स्थिति पैदा करेगा जब आज की तरह टेलीफोन के उपयोग से छुटकारा पाकर प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से जुड़ जाएगा । ऐसे माहौल में बिना किसी लागत के और प्रकाश की गति से भी तेज विचारों का आदान-प्रदान होगा । इस प्रक्रिया को न तो कोई सरकार रोक सकेगी और न ही कोई विशेष लाभ समूह । आज जिसे हम प्रातिनिधिक लोकतंत्र कहते हैं यह उसे धराशायी कर देगी । राजनीति पर पैसे का दबाव खत्म हो जाएगा और उसका स्थान स्वतंत्र सूचना व्यवस्था ले लेगी । यह सूचना व्यवस्था सभी सचेत नागरिकों के लिए व्यापक विविधता वाले राजनीतिक विकल्पों का प्रतिनिधित्व करेगा । इसमें भागीदारी सभी योग्य व्यक्तियों के लिए खुली होगी । इलेक्ट्रॉनिक सूचना व्यवस्था विचारों की अभिव्यक्ति के लिए मंच उपलब्ध कराएंगे । प्रतिद्वंद्वी मत बिना किसी रोकटोक के प्रचारित किए जा सकेंगे, उनकी आलोचना की जा सकेगी और उन पर बहस

की जा सकेगी । भुगतान आधारित राजनीतिक विज्ञापन, वित्तीय प्रचार अनुदान और राजनीतिक कार्रवाई समितियों का खात्मा हो जाएगा । विचारों की मुक्त प्रतिद्वंद्विता में से राजनीतिज्ञों का चयन होगा । उनकी शक्ति सीमित और विकेंद्रित होगी । वे नागरिकों के प्रति जवाबदेह होंगे । समाज में सफलता और प्रतिष्ठा राजनीतिक ताकत पर निर्भर नहीं रहेगी । प्रातिनिधिक लोकतंत्र का खात्मा हो जाएगा और जल्दी ही इसका स्थान सूचना युग का लोकतंत्र ले लेगा जो हम सबके लिए बेहतर होगा' (बल हमारा) (हाउ टू सेव अवर कंट्री : ए नॉनपार्टिजन विजन फॉर चैंज, पलास प्रेस, टकसन, 1994; जियाउद्दीन सरदार की पुस्तक **'पोस्टमॉर्डनिज्म एंड दि अदर : दि न्यू इंपरियलिज्म ऑफ वेस्टर्न कल्चर,** फ्लूटो प्रेस, लंदन; संस्करण : 1998; पृ. 62 से उद्धृत) ।

सूचना क्रांति द्वारा दिखाया गया यह सब्जबाग जिस तरह की भाषा में पेश किया गया है वह स्वयं अपनी असलियत बता देता है । प्रातिनिधिक लोकतंत्र का खात्मा यानी आज जो सार्वभौम मताधिकार को लोकतंत्र की आधारभूत विशेषता माना जा रहा है, सूचना युग में उसको समाप्त करके एक ऐसे लोकतंत्र की स्थापना की जाएगी जिसमें योग्य व्यक्तियों को भागीदारी का अवसर मिलेगा । ये योग्य व्यक्ति कौन होंगे? जाहिर है वे जिनके पास इंटरनेट की सुविधा उपलब्ध होगी और जो अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर साम्राज्यवादी देशों की बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा नियंत्रित होगी । आज जो लाखों-लाख लोग जिनके पास भले ही खाने को रोटी न हो और पीने को पानी न हो और जिन्हें रोजगार भी मुहैया न हो रहा हो, वे भी पांच साल में एक वोट देकर अपनी पसंद की सरकार चुनने की प्रक्रिया में भागीदार होकर अपने नागरिक होने के अधिकार का उपयोग कर लेते हैं, वे लाखों-लाखों लोग इस राजनीतिक प्रक्रिया से अलग कर दिए जाएंगे क्योंकि वे कंप्यूटर नेटवर्क के इस भूमंडलीकृत प्रक्रिया से बाहर ही रह जाएंगे । जाहिर है जिसे सूचना युग का लोकतंत्र कहा जा रहा है वह लोकतंत्र नहीं बल्कि साम्राज्यवाद का उपनिवेशीकरण होगा और आज जो बहुराष्ट्रीय कंपनियां तीसरी दुनिया पर लोभ-लालच और डरा-धमकाकर अप्रत्यक्ष रूप से अपना वर्चस्व कायम किए हुए हैं, वे तब प्रत्यक्ष रूप से शासन करेंगी ।

> लोकतांत्रिक समाजों में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का काफी महत्व होता है | अभी हाल में जब 'तहलका डॉट कॉम' नामक इंटरनेट आधारित पत्रकारिता वेबसाइट ने रक्षा सौदों से संबंधित मामलों में व्यक्त भ्रष्टाचार का पर्दाफाश किया तो कुछ लोगों ने इसे उदारीकरण की जीत बताया क्योंकि उनके अनुसार आर्थिक उदारीकरण ने राज्य के मुकाबले में व्यक्ति को ताकतवर बनाया है तो दूसरों के अनुसार यह एक नई तरह की पत्रकारिता है जिसका संचालन जनता करेगी और जो बिना पूंजी की मदद के भी संभव होगी | लोकतन्त्र में विरोध के स्वर को काफी महत्व दिया जाना चाहिए |

ये भिन्न-भिन्न विरोधी स्वर ही इस बात के प्रमाण होते हैं कि वह समाज एक खुला समाज है और जहां लोगों को अपनी बात कहने का पूरा अधिकार है । लेकिन अत्यंत विकसित लोकतांत्रिक समाजों में भी ऐसा नहीं हो रहा है । आमतौर पर ऐसे समाजों में नियंत्रण का अर्थ सरकार का नियंत्रण और खुलेपन का अर्थ पूंजीपति वर्ग के लिए खुलेपन से होता है । दोनों ही मामले में वे बात तो राष्ट्र की करते हैं लेकिन वहां हकीकत में राष्ट्र कहीं नहीं होता । मकसद सिर्फ यह होता है कि राष्ट्र का नाम लेकर इस वर्ग के स्वार्थों को पूरा किया जा सके । और इस प्रक्रिया में राष्ट्रीय हितों के नाम पर

उन सब चीजों के विरुद्ध मुहिम चलाई जाती है, जिनका संबंध समाज के निचले तबकों से होता है । नोम चोमस्की ने विकसित देशों के संदर्भ में इस बात का उल्लेख किया है । उनका कहना है कि इन देशों का अभिजात वर्ग उन हितों को विशेष हितों का नाम देता है जिनका संबंध किसानों, महिलाओं, मजदूरों, युवाओं और बुजुर्गों, विकलांगों, अल्पसंख्यकों आदि से होता है (नेसेसरी इल्युजन्स, पृ. 3) । नोम चोमस्की की बात आज पूरी तरह से भारत पर लागू हो रही है । यहां भी निजी निगम क्षेत्र सरकार पर वहीं दबाव डाल रहा है कि वह राष्ट्रीय हितों के साथ समझौता न करे । समझौता करने से उनका तात्पर्य समाज के कमजोर तबकों को मिलने वाली मामूली सुविधाओं को भी समाप्त कर दिया जाए, जबकि अर्थव्यवस्था का सबसे अधिक दोहन इसी अभिजात वर्ग के हित में हो रहा है । उत्पादन और निर्यात को बढ़ावा देने के नाम पर वे जनता की कमाई का एक बड़ा हिस्सा हड़प लेते हैं । लेकिन वे ऐसा करते हुए भी जनता के एक बड़े हिस्से को यह भरमाने में कामयाब रहते हैं कि यह राष्ट्रीय हित में हैं कि जनता को मिलने वाली सुविधाओं के बड़े हिस्से को वह छीनने दे ताकि अर्थव्यवस्था को संकट से उबारा जा सके । इस प्रकार जनविरोधी नीतियां अपनाते हुए भी जनविरोधी सरकारें जनसंचार माध्यमों के जरिए अपना नियंत्रण बनाए रखती हैं ।

यह पहले कहा जा चुका है कि संचार का नए से नया माध्यम भी शासक वर्ग से तभी तक बचा रहता है जब तक वह उनके आर्थिक और राजनीतिक लाभ के लिए उपयोगी नहीं होता जैसे ही वह माध्यम उनके आर्थिक और राजनीतिक हितों के लिए मददगार होने की संभावनाएं प्रकट करने लगता है वे उसको जल्दी से जल्दी अपने नियंत्रण में ले लेते हैं। इंटरनेट नया माध्यम है यदि इसमें भी वे राजनीतिक-आर्थिक लाभ नजर आने लगेंगे जो आज टीवी और अखबारों में नजर आ रहे हैं तो बडी पूंजी उसको भी अपने वर्चस्व में ले लेगी । ऐसे में वह माध्यम अपने मालिक की सेवा करने लगता है । माध्यम पर अपना वर्चस्व बनाए रखने के लिए वे कई ऐसे तरीके अपनाते है, जिनके बारे में उनका दावा होता है कि इससे वे जनता के मत को अभिव्यक्ति देते है । लेकिन क्या वे माध्यम सचमुच जनता का मत पेश कर रहे होते हैं । पहली बात तो यह है कि भारत जैसे देश में जहां अभी भी लगभग चालीस फीसदी आबादी निरक्षर है, वहां अखबारों और टेलिविजन किस हद तक जनता की राय का प्रतिनिधित्व करते हैं, कहना मुश्किल नहीं है । सच तो यह है कि वह शिक्षित वर्ग का भी सही प्रतिनिधित्व नहीं करते ।

जनसंचार के व्यापक होते घेरे ने सूचनाओं के ऐसे दलदल में आम आदमी को फंसा दिया है कि वह रही-सही राजनीतिक निर्णय लेने की क्षमता भी खोता जा रहा है । जनता को भुलावे में रखने के लिए अभिजात वर्ग अपने हित में कई ऐसी विचारधाराओं का इस्तेमाल करता है, जो सतह से देखने पर निर्दोष नजर आती हैं, लेकिन जिसकी आड़ में वे अपने स्वार्थो को पूरा करते हैं । राष्ट्रवाद ऐसी ही विचारधारा है जिसके माध्यम से शासक वर्ग अपने स्वार्थो को पूरा करता है । इस तरह की विचारधारा के द्वारा शासक वर्ग सिर्फ पाठकों और दर्शकों को ही भ्रमित नहीं करता बल्कि वह पत्रकारों को भी दिग्भ्रमित करते हैं । वे भी इस तरह की बातों को लगभग उसी रूप में ग्रहण करते हैं जिस रूप में अभिजात वर्ग चाहता है । सच्चाई यह है कि पत्रकारों का एक समूह अपने हितों को अभिजात वर्ग के साथ जोड़ लेता है ।

पत्रकारों के बीच के बीच पनपने वाली इस प्रवृत्ति पर फ्रांसीसी विचारक पियरे बोर्दियु ने विचार किया है | राजनीति के बारे में सनकी नजरिया पनपाने में पत्रकारों की भूमिका पर विचार करते हुए वे लिखते हैं, "राजनीतिक संसार में पत्रकारों ने एक संदिग्ध स्थिति हासिल कर ली है | वे इस के प्रभावशाली अभिनेता तो हैं लेकिन उसके पूर्णरूपेण सदस्य नहीं हैं | यह स्थिति उन्हें इस योग्य बनाती है की वे राजनीतिज्ञों को जीवंत सांकेतिक समर्थन प्रदान कर सकें जो कि वे खुद अपने लिए हासिल नहीं कर सकते|" यही कारण है कि वे राजनीति के अच्छे पक्षों को देखने के बजाय बुरे पक्षों को ही देखते हैं| वे ऐसे व्यक्ति की तरह होते हैं जो हरेक को गाली देता है और जो हमेशा स्कैंडल की ही चर्चा में करता है| वे संदेह के दर्शन पर यकीन करते हैं और राजनीति के क्षेत्र में ऐसी बातों में उनकी ज्यादा दिलचस्पी होती है जिसका गंभीर राजनीति से कुछ लेना-देना नहीं होता | पियरे बोर्दियु के अनुसार यह सब चीजें उन्हें राजनीति के प्रति सनकी नजरिए की तरफ ले जाती है जिन्हें हम उनके राजनीतिक तर्कों,राजनीतिज्ञों से लिए गए साक्षात्कारों के दौरान पूछे गए सवालों में देख सकते हैं| उनके लिए राजनीति ऐसा क्षेत्र है जिसमें अतिमहत्वांकाक्षी लोग आते हैं, जिनमे प्रतिद्व्दी स्थितियों और विरोधी हितों की साफ चेतना होती है | अपनी इसी समझ के तहत वे राजनीतिज्ञों के परामर्शदाता और सलाहकार की भूमिका अपना लेते हैं | पत्रकारों की इस समझ का पूरा फायदा राजनीतिज्ञ भी उठाते हैं और वे अपने हितों को पूरा करने में उनका इस्तेमाल करते है | इस प्रकार राजनीतिज्ञ और पत्रकार दोनों का जनता से संबंध टूट जाता है | खासतौर पर जनता के उस हिस्से से उनका संबंध टूट ही जाता है जो राजनीति की इस हालत के उनके जीवन पर और समाज पर पड़ने वाले प्रभावों के प्रति जागरूक होते हैं| (पियरे बोर्दियु : ऑन टेलिविजन एंड जर्नलिज्म, प्लूटो प्रेस, लंडन संस्करण, 1998, पृ. 5)

जनसंचार के माध्यमों से कोई भी संदेश बिना बुद्धिजीवी वर्ग के सहयोग के लोगों तक पहुंचना असंभव है । यद्यपि इंटरनेट और डिजिटल प्रौद्योगिकी के इस दौर में इस वर्ग की भूमिका काफी हद तक सीमित होती जा रही है । लेकिन इससे यह नतीजा गलत होगा कि उनकी भूमिका समाप्त हो गई है । कठिनाई यह है कि बुद्धिजीवी वर्ग जो जनसंचार माध्यमों के उपयोग के लिए सॉफ्टवेयर तैयार करने में मुख्य भूमिका निभाता है, इन माध्यमों के वर्गीय चरित्र को समझने में आमतौर पर नाकामयाब रहता है । यही कारण है कि वह प्रभु वर्गो के आर्थिक हितों को पूरा करने का माध्यम बन जाता है । वह यह समझने लगता है, जो उसके लिए वर्गीय दृष्टि से प्रतिकूल होते हैं । वह कई ऐसी अवधारणाओं में विश्वास करने लगता है, जो उसके लिए वर्गीय दृष्टि से प्रतिकूल होते हैं । मसलन, किसी क्षेत्र विशेष में उसकी योग्यता को वह अपनी निजी प्रतिभा का कमाल समझता है और अपने ही क्षेत्र के दूसरे लोगों और दूसरे वे लोग जिन्हें अपनी क्षमताओं को निर्मित करने के अवसर उन्हें मिले उनसे वह अपने को उच्च समझने का भ्रम पालने लगता है । जबकि वह अपनी सारी प्रतिभा और ज्ञान के बावजूद अंततः ऐसे किसी मालिक के लिए काम कर रहा होता है जिसका मकसद सिर्फ और ज्यादा-से-ज्यादा मुनाफा कमाना होता हे । वह तभी तक प्रतिभावान है, जब तक इन मालिकों के मुनाफे में वे सहायक बने होते हैं । इस तरह वे एक ऐसे काम को अंजाम देते रहते हैं, जिसके सामाजिक परिणामों के बारे में

वे सोचते नहीं या सोचना नहीं चाहते । इस प्रकार, जनसंचार माध्यमों का विस्तार किसी ऐसे राजनीतिक माहौल की गारंटी प्रदान नहीं करता जो जनता के हित में हो बल्कि इसके विपरीत वह राजनीति में भी यथास्थिति को बनाए रखने में ही अपनी भूमिका नजर आ रहा है । इस स्थिति में बदलाव तभी संभव है जब जनसंचार पर वर्गीय वर्चस्व का स्वरूप बदले ।

13.6 संचार के सामाजिक आयाम

संचार और सूचना के समाज के साथ संबंधों को समझने के लिए पहले के समाजों से इनके अंतर को समझना होगा । कोई भी समाज ऐसा नहीं होता जहां सूचना और संचार का महत्व नहीं होता । यहां तक कि आदिम समाज या कृषि समाज में भी उत्पादन के नए साधनों की एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति और एक समुदाय से दूसरे समुदाय तक गतिशीलता सूचना के आदान-प्रदान के जरिए रही होगी और इसके लिए संचार के साधनों की जरूरत महसूस की गई होगी । नए औजार, उत्पादन की नई विधियों की जानकारी और उनका उपयोग विभिन्न समाजों में इसी प्रक्रिया में फैला होगा । यहां तक कि औद्योगिक समाज में भी सूचना की इस भूमिका से इनकार नहीं किया जा सकता । इनकी चर्चा हम इकाई के आरंभ में कर चुके है । इसके विपरीत, हम यह भी कह सकते हैं कि विकास के साथ-साथ सूचना का महत्व भी उसी अनुपात में बढ़ता गया है, यहां तक कि अब हम एक ऐसे युग में रह रहे हैं जिसे उत्तर-औद्योगिक समाज या सूचना समाज कहा जा रहा है ।

संदेशों के आदान-प्रदान के लिए जिन साधनों या माध्यमों की जरूरत होती है, उनका विकास सामाजिक विकास के साथ होता रहा है । भाषा एक ऐसा ही माध्यम है और हम सभी जानते हैं कि न केवल सूचना वरन् सामान्य से संवाद में भी भाषा की कितनी महत्वपूर्ण भूमिका होती है । लेकिन क्या भाषा की उपलब्धता बिना किसी रोकटोक के रही है? किसी भाषा को बोलना और सुनकर समझना और भाषा को लिख सकने और पढ़ सकने में कितना फर्क है । पहला व्यक्ति निरक्षर कहलाता है और दूसरा साक्षर । व्यक्ति उन सूचनाओं से, उस ज्ञान से वंचित रह जाता है जो पुस्तकों में लिपिबद्ध है या जो लिखित रूप में उसके सामने आता है । हजारों साल से भाषाओं का अस्तित्व है लेकिन पढ़ना और लिखना सीखना भी क्या सभी समाजों में सभी के लिए समान रूप से उपलब्ध है? स्पष्ट है, नहीं । यही नहीं भारत में स्त्रियों और निम्न समझी जाने वाली जाति के लोगों को पढ़ना-लिखना सीखने से राज्य और धर्म द्वारा बलपूर्वक रोका जाता रहा । भाषा के उदाहरण से साफ है कि सूचना सभी समाजों में सभी के लिए उपलब्ध नहीं थी । कह सकते हैं कि समाज पर नियंत्रण रखने वाला प्रभु वर्ग शुरू से ही इसे अपने पक्ष में नियंत्रित और प्रभावित करता रहा है । आज भी इंजीनियरी, डाक्टरी आदि की उच्च शिक्षा अंग्रेजी भाषा में ही उपलब्ध है और इन शिक्षाओं को प्राप्त करने के लिए जो मानक तैयार किए गये हैं वे अभिजात वर्ग के समर्थन में जाते हैं । भारत जैसे देशों में यह उच्च शिक्षा महंगी भी होती जा रही है। इन सबका नतीजा यह है कि जो लोग अंग्रेजी भाषा को नहीं जानते, जो अपने बच्चों को ऐसी शिक्षा दिलाने के लिए जरूरी तैयारी कराने के लिए आर्थिक रूप से सक्षम नहीं हैं उनके बच्चे चाहकर भी उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाते ।

आज जिसे सूचना समाज कहा जा रहा है उसकी विशेषताओं को जानना भी जरूरी है | अमरीकी विद्वान एवरेट्ट एम. राजर्स ने सूचना समाज को परिभाषित करते हुए लिखा है कि सूचना समाज वह राष्ट्र है जहां अधिकाशं श्रम शक्ति सूचना श्रमिक के रूप में सघंटित होती और जहां सूचना सबसे प्रमुख तत्व होता है || इस प्रकार सूचना समाज औधोगिक समाज से एक स्पष्ट परिवर्तन का प्रतिनिधित्व करता है जहां श्रम शक्ति निर्माण व्यवसाय से जुड़ी होती है, जैसे ऑटो एसेम्बली और स्टील उत्पादन का काम और जहां का मुख्य तत्व ऊर्जा होती है | इसके विपरीत सूचना प्रौधोगिकी के उत्पादन की होती है | सूचना के विशिष्ट कामगारों में शिक्षकों, वैज्ञानिकों समाचारपत्र के संवाददाता, कम्प्यूटर प्रोग्रामर, परामर्शदाता, सेक्रेटरी औरर प्रबंधकों की गणना की जाती है | ये शक्ति लिखते हैं, पढ़ाते हैं, परामर्श बेचते हैं, आदेश देते हैं और अन्यथा सूचना का संचालन करते हैं | उनकी मुख्य गतिविधि भोजन पैदा करना नहीं है और न ही नट और बोल्ट कसना है और न ही भौतिक वस्तुओं का संचालन करना है | (कम्यूनिकेशन टेक्नोलॉजी, दि फ्री प्रेस, न्यूयार्क, 1986, पृ. 10)

सूचना समाज की संकल्पना का संबंध सूचना प्रौद्योगिकी से है । माइक्रोइलेक्ट्रनिक्स पर आधारित कम्प्यूटर के माध्यम से सारी दुनिया तक पहुंचने वाली इस प्रौद्योगिकी ने सारी दुनिया को आपस में जोड़ दिया है । अब कोई भी व्यक्ति अपने कम्प्यूटर में समस्त दुनिया में व्याप्त संजाल (वर्ल्ड वाइड वेब) के माध्यम से दुनिया के किसी कोने की सूचना प्राप्त कर सकता है और सूचना को पहुंचा भी सकता है । यह सूचना लिखित रूप में, आवाज के रूप में और दृश्य के रूप में हो सकती है । यह सूचना अपरिमित हो सकती है और कोई भी इन तीनों रूपों में सूचना को निर्मित भी कर सकता है । इसका सीधा सा अर्थ यह है कि कम्प्यूटर के माध्यम से व्यक्ति अपने निजी और व्यावसायिक जरूरतों को पूरा कर सकता है । सूचना समाज के समर्थक इसकी एक अत्यंत लुभावनी तस्वीर पेश कर रहे हैं । 'वर्तमान में लोगों की जरूरत अपने भविष्य को संवारने में है । व्यवसाय की जरूरत अधिक प्रतिस्पर्धात्मक और लाभप्रद होने में है, सीधे शब्दों में अपने अस्तित्व को बचाने में है । सरकारों की जरूरत अधिक सक्षम और प्रभावशाली ढंग से राज चलाने में है । डॉक्टरों और अस्पतालों की जरूरत बेहतर स्वास्थ्य सेवा प्रदान करने में है । स्कूलों की जरूरत बेहतर शिक्षा प्रदान करने में है । आज ये सभी कार्य सूचना व्यवसाय द्वारा संचालित हो रहे हैं । और वे एक बहुत ही चुनौतीपूर्ण कल का निर्माण कर रहे हैं' (मेनकरेंटस इन मास कम्यूनिकेशंस, संपादन वारेन के. एजी, फिलिप एच. आल्ट और एडविन एमेरी, हार्पर एंड रो, पब्लिशर्स, न्यूयार्क से उद्धृत चार्ल्स मार्शल का कथन, पृ. 345) । चार्ल्स मार्शल का मानना है कि लोग यह चाहते हैं कि कम्प्यूटर आपस में एक-दूसरे से बात करें, आपस में एक दूसरे से जुड़े हों । लेकिन वे यह भी चाहते हैं कि वे इन कम्प्युटरों को और किसी भी सूचना उपकरण को खरीद सकें । उनमें वे सभी नवीनतम सूचनाएं, आकड़े और जानकारियां उपलब्ध हों जिनकी कि जरूरत उन्हें एक व्यापारी, उद्योगपति, अध्यापक, राजनीतिज्ञ, डॉक्टर या और किसी रूप में महसूस हों । वे एक ऐसे नेटवर्क के हिस्से हों जहां दुनिया की जानकारी का भंडार 'ऑन लाइन' उपलब्ध हो ताकि वे चाहे जब अपनी जरूरतों को पूरा कर सकें (वही, पृ. 345) । सूचना के पैरोकारों के अनुसार यह सपना अब सच में बदलने जा रहा है ।

सूचना समाज वह समाज है जहां सूचना वह उत्पादन है जिसके साधनों पर एक खास वर्ग का अधिकार है । क्या इस समाज में सूचना उत्पाद का रूप धारण कर चुकी है? यानी ऐसा उत्पाद जिसे खरीदा और बेचा जा सकता है, जिसे विनिमय के लिए भंडारित किया जा सकता है और जिसके उत्पादन और विनिमय पर एकाधिकार कायम किया जा सकता है । सूचना के उत्पादन और विनिमय पर जिसका एकाधिकार हो जाता है, वह सिर्फ सूचना के प्रवाह पर ही नहीं समाज पर शासन करने की स्थिति में होता है । ऊपर जिसे सूचना श्रमिक कहा गया है वे सूचना के संसाधनों के मालिक नहीं हैं । फैक्टरी में काम करने वाले दूसरे मजदूरों की तरह उन्हें भी अपना श्रम बेचना पड़ता है चाहे उस श्रम में भौतिक श्रम का अंश कम हो और बौद्धिक श्रम का अंश अधिक । इसी तरह यदि किसी देश में सूचना श्रमिकों की संख्या ज्यादा होती है तो इसका अर्थ यह नहीं है कि वहां ऊर्जा आधारित औद्योगिक संस्थानों की जरूरत समाप्त हो गई है । इसके विपरीत सूचना आधारित उद्योग के पनपने के बावजूद हमारी बुनियादी जरूरतों को पूरा करने वाले भौतिक श्रम की जरूरत वैसे ही बनी रहती है, यह बात हम पहले कह चुके हैं । हां, यह जरूर है कि इस सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग इस व्यवसाय का फैलाने और उपभोक्ताओं तक अपने उत्पादों की मार्केटिंग करने के लिए भी किया जा रहा है । सूचना के क्षेत्र की व्यावसायिक संभावनाओं के कारण ही विकसित देशों ने सूचना प्रौद्योगिकी के जरिए गरीब और पिछड़े देशों को शोषित करने का एक और ताकतवर क्षेत्र प्राप्त कर लिया है ।

सूचना समाज के दूसरे पहलू पर भी यहां विचार कर लेना जरूरी है । जनसंचार के इन माध्यमों में कम्प्यूटर के अलावा सबसे महत्वपूर्ण टेलीविजन है । भारत जैसे विकासशील देश में भी आज टेलीविजन देश के लगभग सभी हिस्से में पहुंच चुका है । यद्यपि आज भी दूरदर्शन का ही प्रसारण पर एकाधिकार है और लगभग दो तिहाई दर्शक सिर्फ दूरदर्शन ही देखते हैं लेकिन केबल टीवी के माध्यम से लगभग एक तिहाई हिस्सा चालीस से अधिक केबल चैनलों से भी जुड़ गया है । इस तरह जिसके पास भी टीवी है उसके लिए आज टीवी ही सूचना और मनोरंजन का प्रमुख साधन है । टीवी की प्रकृति इस तरह की है कि लोगों को उसको देखने के लिए अपना काम-धाम छोड़ने के लिए उसके सामने बैठना पड़ता है । टीवी पर सबसे लोकप्रिय कार्यक्रम तब आते हैं जब घर के सभी सदस्य एक साथ होते हैं और वे यदि टीवी न देख रहे हों तो किसी न किसी पारिवारिक और सामाजिक कार्यों में संलग्न रह सकते हैं लेकिन अब टीवी के कारण लोगों के सामाजिक जीवन और नजरिए पर गहरा नकारात्मक प्रभाव दिखाई देता है । वे टीवी के छोटे से पर्दे को जानकारी, शिक्षा और मनोरंजन सबका इकलौता और संपूर्ण साधन मान लेते हैं और ऐसे दूसरे माध्यम जिनसे भी यह ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है उनको अपने जीवन से बाहर कर देते हैं ।

संचार के नए माध्यमों का बच्चों और किशोरों पर ज्यादा गहरा असर दिखाई देता है । टीवी के वैविध्यपूर्ण और रंगीन कार्यक्रम के गतिशील चित्र उनके मानस के लिए किसी फैंटेसी से कम नहीं होते । वे यदि छुटपने से ही उनके आदी हो जाते हैं तो वे उसके साथ कोई बौद्धिक और आलोचनात्मक रवैया विकसित नहीं कर पाते । वे यह मान लेते हैं कि टीवी के छोटे से पर्दे पर जो भी दिखाया जा रहा है वही सत्य है, वही आनंद और जीवन का लक्ष्य है । कम्प्यूटर और नेटवर्क ने उनके लिए दुनिया को और छोटा कर दिया है । इंटरनेट पर सर्फिंग करते हुए वे यही मान लेते हैं कि जो यहां है वही ऐसा है जिसे जानने की जरूरत है और जो यहां नहीं है उसे जानने की जरूरत नहीं है । इस प्रकार अपने समाज और पूरे विश्व के बारे में वे एक खंडित सोच के साथ बड़े होते हैं । टीवी के छोटे पर्दे

पर समाज के अभिजात वर्ग की विलासिता और उनकी ताकत का ऐसा खुला प्रदर्शन होता है कि उसे हासिल करने का वे अपने जीवन का भी लक्ष्य समझ लेते हैं। यह कोई आकस्मिक बात नहीं है कि अमरीका में उन बच्चों और किशोरों ने जिन्होंने अपने ही साथियों को आग्नेय अस्त्रों द्वारा मार डाला वे टीवी और इंटरनेट के गहरे प्रभाव में थे ।

लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि सामाजिक विचलनों की सारी जिम्मेदारी इन जनसंचार माध्यमों पर डाल दी जाए। जनसंचार माध्यमों पर तो वही आएगा जो समाज में हो रहा होगा । यदि इराक पर बमबारी करने वाले बमवर्षक विमानों को टीवी पर 'लाइव' दिखाया जाता है और दुनिया का एक हिस्सा उसको देखकर 'आनंद' का अनुभव करता है तो वह इसीलिए नहीं कि वह ऐसा टीवी पर देख रहा है बल्कि इसलिए कि इराक में मरने वाले साधारण स्त्री, पुरुष और बच्चों के प्रति जो हमारे मन में मानवीय संवेदना होनी चाहिए उसे हम पहले ही गंवा चुके हैं । जिस तरह का समाज हम बना रहे हैं जिसमें कि प्रत्येक व्यक्ति इस बात से जाना जाता है कि उसके पास कितना अकूत धन है और उन धन के बल पर उसने कितनी ताकत हासिल कर ली है वहां जाहिर है कि मानवीय मूल्यों और संवेदनाओं के लिए कितनी जगह रहेगी । यही बात स्त्रियों के प्रति नजरिए में देखने को मिलती है । जनसंचार माध्यम ऐसी स्त्रियों को ग्लोरिफाई करते हैं जो एक तरफ आधुनिकतम सौंदर्य प्रसाधनों का उपयोग करने में सक्षम बनकर विश्व सुंदरी बनने का स्वप्न देखती हो, दूसरी तरफ वह करवा चौथ का व्रत करने वाली पति परायणा भी हो जिसका संचार उसके घर और ससुराल की चारदीवारी से बाहर न हो । यदि वह इसे लांघने की कोशिश करे तो उसे वैसे ही संकटों का सामना करना पड़ेगा जैसा कि सीता को करना पड़ा था ।

संचार के सामाजिक संदर्भ पर विचार करते हुए स्वयं इन माध्यमों की सामाजिक हैसियत पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए । एक तरह की श्रेणीबद्धता हम इसमें देख सकते हैं । आपके पास कौन-कौन से संचार माध्यम है उससे आपकी सामाजिक स्थिति का पता चलता है । यदि आप एक रेडियो या ट्रांजिस्टर रखने की हैसियत नहीं रखते तो आप नागरिकता के लगभग सारे अधिकरों से वंचित ही रहेंगे । और यदि आपके पास रेडियो ही नहीं टीवी, टेलीफोन, मोबाइल, मल्टीमीडिया और इससे भी आगे के संचार माध्यम हैं तो जाहिर है कि आप की हैसियत किसी भी दूसरे नागरिक के मुकाबले में कहीं ज्यादा होगी । यह और बात है कि आप अपने समाज के प्रति किसी तरह के दायित्वबोध से शून्य ही क्यों न हो । वैसे तो प्रत्येक युग में संचार का सामाजिक वर्चस्व से संबंध रहा है लेकिन आज जब संचार के माध्यम न केवल बहुत अधिक बढ़े हैं बल्कि उनका विस्तार होने के कारण उन्हें जनसंचार भी कहा जाने लगा है । फिर भी, हम देखते हैं कि संचार माध्यमों की उपलब्धता समाज के सभी वर्गो और समुदायों के बीच समान रूप से नहीं है । यही नहीं एक हद तक वह समाज में व्याप्त गैरबराबरी और रूढ़िवादी विचारों को बदलने में भूमिका निभाने के बजाए उनको मजबूत करने में अधिक सक्रिय नजर आ सकते हैं । समाज का प्रभुत्वशाली वर्ग जिसका सत्ता पर भी नियंत्रण होता है वह कई तरीकों से संचार माध्यमों पर अपने नियंत्रण को बनाये रखने में कामयाब हो जाता है । हम इस पहलू पर राजनीतिक आयाम के संदर्भ में चर्चा कर चुके हैं ।

13.7 संचार के सांस्कृतिक आयाम

संचार के सांकृतिक प्रभावों को समझने के लिए इस बात को ध्यान में रखना जरूरी है कि संचार के द्वारा जो उत्पाद होता है वह वस्तुतः सांस्कृतिक उत्पाद है । वह किसी भौतिक वस्तु का

उत्पाद नहीं है । वह एक तरह का संदेश है जो अमूर्त है और जिसके साथ हमारा संबंध मानसिक और भावात्मक होता हैं जब हम अखबार में समाचार पढ़ते है तो समाचार हमारी चेतना पर असर डालते हैं, हमारी भावनाओं को उद्वेलित करते हैं और हमारे विचारों से टकराते हैं । जब हम टीवी पर या सिनेमाघर में किसी धारावाहिक या फिल्मी को देख रहे होते हैं तो यह जानते हुए कि वहां जो भी दिखाया जा रहा है वह गढ़ा हुआ है फिर भी हमारी भावनाएं वैसे ही उद्वेलित होती हैं जैसे कि वे घटनाएं सचमुच घटी हों और हम भी किसी न किसी रूप में उनमें शामिल हों । इसलिए संचार माध्यमों द्वारा संप्रषित संदेशों का हमारे जीवन पर गहरा असर पड़ता है । यह प्रक्रिया कितने गहरे रूप में हमारे मानस पर असर डालती है इसका एक उदाहरण यहां प्रस्तुत है-

> कोका कोला के एक विज्ञापन में फिल्म अभिनेत्री, मॉडल और पूर्व मिस वर्ल्ड ऐश्वर्य राय टीवी का मैच देख रही है, मैच देखते हुए वह महसूस करती है कि जब भी वह कोका कोला की नई बोतल खोलती है तो भारतीय टीम चौका लगाने में कामयाब होती है | थोड़ी ही देर में उसे इस बात का एहसास हो जाता है कि बोतल खोलने पे चौका लगता है और वह ऐसा करने लगती है | कुछ ही देर में उसके सामने कोका कोला की खुली बोतलों का ढेर लग जाता है | कोका कोला के ही दूसरे विज्ञापन में आमिर खान जब बोतल खोलता है तो विरोधी टीम के विकेट गिरते हैं | ये विज्ञापन किस विचार को प्रसारित कर रहे हैं? क्या भारतीय टीम का कोका कोला की बोतलों के साथ ऐसा कोई संबंध संभव है? जाहिर है नहीं|

लेकिन यहां दर्शकों की पिछड़ी चेतना का इस्तेमाल किया जा रहा है जो ये मानते हैं कि जीवन में सफलता और असफलता महज भाग्य का खेल है । विज्ञापन में कोका कोला को उस सौभाग्य का प्रतीक बताया जा रहा है जो भारत को क्रिकेट में कामयाबी दिलाती है । तर्क को आगे बढ़ाया जाए तो यह कहने की कोशिश की जा रही है कि कोका कोला भारत की विजय का प्रतीक है । यदि आप कोका कोला पीते हैं तो आप भारत की विजय के साथ हैं । लेकिन क्या इसका यह भी संदेश नहीं है कि कोका कोला देशभक्ति का प्रतीक है । इस तरह इस उत्पाद का विज्ञापन दर्शकों को इस ठोस सच्चाई को भूलने के लिए उकसाता है कि यह एक विदेशी कंपनी है और भारत से इसका सिर्फ एक ही हित जुड़ा है कि वह यहां के बड़े बाजार पर अपना नियंत्रण कायम करे और यहां से ज्यादा-से-ज्यादा मुनाफा बटोर कर ले जाए । अपने आर्थिक लाभ के लिए किस तरह लोगों की देशभक्ति का चतुराई पूर्ण इस्तेमाल किया गया है इसकी तरफ यदि हमारा ध्यान नहीं जाता है तो हम इन निगमों की आर्थिक भूमिका के बारे में आलोचनात्मक रवैया विकसित करने में कामयाब नहीं हो सकते ।

संचार माध्यमों के विस्तार के साथ सांकृतिक रूपों के प्रभाव की, विद्वानों ने कई तरह से व्याख्या की है । पीटर गोल्डिंग ने इस संबंध में उपलब्ध पांच दृष्टियों का उल्लेख किया है । पहले सिद्धांत के अनुसार, सांस्कृतिक उत्पादों के प्रति लोगों का नजरिया निष्क्रिय नहीं होता । वे संदेश की व्याख्या करने की क्षमता रखते हैं और अपने हित और अहित का निर्णय लेने में सक्षम होते हैं । दूसरा सिद्धांत यह है कि तीसरी दुनिया के अनेक केंद्र फिल्म, टेलीविजन कार्यक्रमों या संगीत की प्रभावशाली तथा बड़े क्षेत्र में वितरित होने वाली सामग्री के महत्वपूर्ण स्रोत बन गय हैं । इस प्रकार वे स्थानीय लोगों की सांस्कृतिक जरूरतों के लिए विकसित देशों पर पूरी तरह निर्भर नहीं है । तीसरा सिद्धांत यह है कि क्षेत्रीय सहयोग की संभावनाएं पहले की तुलना कहीं ज्यादा बढ़ी हैं जिसकी कल्पना यूनेस्को की

मेकब्राइड रिपोर्ट में की गई है । लेकिन गोल्डिंग का यह कहना सही प्रतीत होता है कि ऐसा सहयोग विकासशील देशों में ऐसा प्रभुवर्ग सत्ता पर आसीन है जिसका हित बहुराष्ट्रीय निगमों और इजारेदारी हितों के साथ जुड़ा है । अंतिम सिद्धांत यह है कि इन माध्यमों का इस्तेमाल भिन्न ढंग से करना। यह काम ऐसे वर्गों, संगठनों और समुदायों द्वारा किया जा सकता है जो सामान्यजन के हितों को सर्वोपरि समझते हैं न कि आर्थिक हितों को । हालांकि यह काम अभी बहुत कम देखने में आ रहा है लेकिन यह ऐसा जरूरी काम है जिसे जनता के विभिन्न हिस्सों को अपने हाथ में लेना होगा ।

संचार माध्यमों के विस्तार के साथ यदि अपने देश के सांस्कृतिक परिदृश्य पर नजर डालें तो हम यह पाते हैं कि आधुनिक माध्यमों का इस्तेमाल करने वाली ताकतें एक तरह के प्रतिगामी और एक आयामी सांस्कृतिक नजरिए की समर्थक हे । यह आकस्मिक नहीं है कि सांप्रदायिक और तत्त्ववादी ताकतें अपने विचारों के प्रचार के लिए इंटरनेट सहित सभी आधुनिक माध्यमों का इस्तेमाल कर रही हैं । इसी तरह टीवी के विभिन्न चैनलों पर प्रसारित होने वाले ज्यादातर धारावाहिकों की कथावस्तु में निहित वैचारिक ढांचा प्रतिगामी, स्त्री स्वतंत्रता का विरोधी और अभिजात समर्थक होता है । लेकिन इसका अर्थ यह भी नहीं है कि इन माध्यमों का यह स्वाभाविक चरित्र है कि वह सिर्फ ऐसे जीवन मूल्यों और सांस्कृतिक रूपों को प्रसारित करेंगे । जैसा कि हम कह चुके हैं इसका कारण इन माध्यमों पर नियंत्रण करने वाले वर्गो के अपने हित हैं । यदि इन हितों का विरोध करने वाली ताकतों को भी अपनी बात कहने के पूरे अवसर उपलब्ध हों तो ये माध्यम भिन्न किस्म के सांस्कृतिक रूपों को व्यक्त करने में भी सक्षम हो सकते हैं । जनसंचार और संस्कृति के पारस्परिक संबंधों का उल्लेख हम इसी पाठयक्रम की इकाई दस में विस्तार से कर चुके हैं ।

13.8 सारांश

आपने 'संचार के नए आयाम' नामक इस इकाई का अध्ययन कर लिया है | आपने यह समझ लिया होगा कि संचार के नए आयामों का संबंध संचार के क्षेत्र की नई प्रौद्योगिकी से है | यह प्रौद्योगिकी जनसंचार के तीनों महत्वपूर्ण क्षेत्रों-दूरसंचार, कम्प्यूटर और जनमाध्यम में इसका तेजी से विस्तार हुआ है और आज यह सबसे ताकतवर उभरता हुआ क्षेत्र है | इसने संचार को भूमडंलीय स्तर पर अधिक व्यापक, अधिक तीव्र और अधिक आसान बनाया है | इसने संचार के नए अनछुए क्षेत्रों में नई संभावनाओं को भी जन्म दिया है | लेकिन क्या इससे हम ऐसी दुनिया में प्रवेश करने में समर्थ हो रहे हैं जो उन समस्याओं से मुक्त हो जिससे अब तक दुनिया सामना करती रही है |

संचार के नए आयाम का सबसे महत्वपूर्ण पहलू उसका आर्थिक पहलू है | यह दावा किया जा रहा है कि संचार के विस्तार और विकास से दुनिया पहले के किसी भी समय की तुलना में ज्यादा समतावादी बन सकेगी | लेकिन अब तक जो प्रमाण मिले हैं वह इस दावे का समर्थन नहीं करते | संचार की यह प्रौद्योगिकी दुनिया के विभिन्न देशों के बीच असमान रुप में वितरित है और एक देश में भी वह असमान रुप में उपलब्ध है | यही नहीं इसका लाभ या तो विकसित देशों की बहुराष्ट्रीयकपंनियां उठा रही हैं या फिर उसी देश की एकाधिकारवादी कंपनियां | इसने भूमंडलीकरण के नाम पर विकासशील देशों को विकसित देशों और बहुराष्ट्रीय निगमों पर निर्भर बना दिया है | इस तरह एक नए तरह के उपनिवेशीकरण की प्रक्रिया शुरू होती हुई दिखाई दे रही है |

संचार के क्षेत्र में हुई नई खोजों ने सिर्फ आर्थिक पहलू पर ही असर नहीं डाला है बल्कि उसने राजनीति पर भी असर डाला है | एक तरफ नई संचार प्रौद्योगिकी के समर्थक राजनीति के क्षेत्र में नए तरह के लोकतंत्र और अधिकारों से वंचित करने की भूमिका भी तैयार कर रहे हैं | वे विकास को जनता के अधिकारों के बराबर रखकर यह मांग कर रहे हैं कि विकास के लिए जनता को कल्याणकारी राज्य के नाम पर मिलने वाली अब तक की सुविधाओं को छीन लिया जाए और के सुविधाएं उनको प्रदान की जाए | सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के विस्तार के साथ यह हो भी रहा है |

संचार और सूचना प्रौद्योगिकी के विस्तार के कारण आज के समाजों को सूचना समाज कहा जाने लगा है | सूचना समाज का तात्पर्य यह है कि ऐसा समाज जिसमें सूचना का स्थान केंद्रीय हो और जिस समाज में सूचना के उत्पादन, वितरण, विनिमय पुनरुत्पादन, प्रसंस्करण, भंडारण आदि में लगे लोगों की जरुरत है कि संचार के नए माध्यमों ने एक महत्वपूर्ण स्थान हासिल कर लिया है | लेकिन अभी भी वह केंद्रीय स्थिति में पहुंचने में कामयाब नहीं हुआ है| संचार के सामाजिक आयाम को वस्तुत: इनके सामाजिक प्रभाव के रुप में देखना चाहिए | सांस्कृतिक रूपों का संप्रेषण करते हुए ये माध्यम समाज पर कई तरह के प्रभाव डाल रहे हैं | ये ज्यादातर प्रभाव नकारात्मक इसलिए है क्योंकि इन माध्यमों का वर्चस्व ऐसे वर्ग के हाथ में है जिसकी दिलचस्पी इस बात में नहीं है कि इन माध्यमों का उपयोग समाजों को समतावादी और लोकतांत्रिक बनाने में करे |

संचार के द्वारा सांस्कृतिक संदेशों का प्रसारण किया जाता है | इन माध्यमों की प्रकृति में ऐसा कुछ नहीं होता कि वे एक ही तरह के सांस्कृतिक संदेशों रुपों के ही संप्रेषण करने में सक्षम हो, बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि ये माध्यम किनके हायों में है और सांस्कृतिक वर्चस्व की उनकी संकल्पना क्या है | आमतौर पर भारत जैसे देश में जिसमें सांस्कृतिक विविधता बहुत सघन रुप में दिखाई देती है, इन माध्यमों का उपयोग इस विविधता को खंडित करने के लिए भी किया जा सकता हैं | दूसरी तरफ इसके माध्यम से सांस्कृतिक और सर्जनात्मक विकास के स्वाभाविक विकास को भी प्रभावित किया जा सकता है |

दरअसल संचार के नए आयाम का अध्ययन करते हुए हमें इस बात को ध्यान में रखना होगा कि हम इन माध्यमों को किसी परिप्रेक्ष्य से देखते हैं और उसके स्वरुप को बदलने, में विभिन्न वर्गों, समुदायों और लोगों की भूमिका को किस रुप में ग्रहण करते हैं |

13.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

रेमंड विलियम्स, संचार माध्यमों का वर्ग चरित्र; ग्रंथशिल्पी, जी-82, विजय चौक, लक्ष्मी नगर, दिल्ली-110092

जवरीमल्ल पारख, जनसंचार माध्यमों का वैचारिक परिप्रेक्ष्य; ग्रंथशिल्पी, दिल्ली-110092

सुभाष धूलिया, सूचना क्रांति की राजनीति और विचारधारा, ग्रंथशिल्पी, दिल्ली-110092

जवरीमल्ल पारख, जनसंचार के सामाजिक सदंर्भ; अनामिका पब्लिशर्स, दिल्ली-110052

पूरनचंद्र जोशी, संस्कृति, विकास और संचार क्रांति: ग्रंथशिल्पी, दिल्ली-110092

जॉन बी. थाम्पसन, आइडियोलॉजी एड मॉडर्न कल्चर; पोलिटी प्रेस, कैम्ब्रिज यू.के.

रॉबर्ट डब्ल्यू. मक्चेस्ने और जॉन बेलामी फोस्टर (संपादक), केपिटलिज्म एंड दि इनफोर्मेशन एज, मंथली रिव्यू प्रेस, न्यूयार्क.

13.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. संचार की नए प्रौद्योगिकी के विकास का उल्लेख करते हुए उसके प्रभावों की चर्चा कीजिए।
2. संचार माध्यमों के विकास ने आर्थिक रूप से विश्व को कैसे प्रभावित किया है? अपना मत प्रस्तुत कीजिए ।
3. जनसंचार माध्यमों के सामाजिक-सांस्कृतिक पहलुओं पर प्रकाश डालिए ।
4. भारतीय संदर्भ में संचार माध्यमों के राजनीतिक संदर्भ का विवेचन कीजिए ।
5. टेलीविजन विज्ञापनों के विश्लेषण द्वारा उसके सांस्कृतिक प्रभावों का मूल्यांकन कीजिए ।

इकाई 14 जनसंचार एवं संस्कृति

14.0 उद्देश्य
14.1 प्रस्तावना
14.2 संस्कृति की अवधारणा
14.3 जनसंचार और संस्कृति का अंतःसंबंध
14.4 भारत में जनसंचार की परंपरा
14.4.1 प्राचीन काल में जनसंचार
14.4.2 मध्य काल में जनसंचार
14.4.3 आधुनिक काल में जनसंचार
14.5 जनसंचार और जन संस्कृति
14.6 संस्कृति उद्योग
14.7 संस्कृति का विरूपीकरण
14.8 सारांश
14.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें
14.10 निबन्धात्मक प्रश्न

14.0 उद्देश्य

जनसंचार और संस्कृति का गहरा संबंध है । जनसंचार के जिन तीन कार्यो का उल्लेख किया जाता है उनका संबंध संस्कृति से है । सूचना शिक्षा और मनोरजन के संप्रेषण द्वारा जनसंचार संस्कृति का ही प्रचार और प्रसार करता है । इस इकाई में आप-

- संस्कृति की अवधारणा क्या है इसे बता सकेंगे ।
- जनसंचार और संस्कृति के अंत:संबंधों की व्याख्या कर सकेंगे ।
- भारत में प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक जनसंचार के विभिन्न रूपों का परिचय प्राप्त करेंगे ।
- आधुनिक काल में जनसंचार ने संस्कृति को कैसे प्रभावित किया है और संस्कृति के नए रूप कैसे विकसित
- हुए हैं इस पर विचार कर सकेंगे ।
- • जनसंचार के इस युग में संस्कृति ने एक उद्योग का रूप ले लिया है । संस्कृति के उद्योग के रूप में परिवर्तित
- होने के महत्व और प्रभाव का उल्लेख कर सकेंगे ।
- जनसंचार के व्यापक फैलाव के कारण संस्कृति के विरूपीकरण के निहितार्थों को बता सकेंगे।

14.1 प्रस्तावना

इस इकाई में आप 'जनसंचार और संस्कृति' का अध्ययन करने जा रहे हैं । इससे पहले की इकाई में आपने 'संचार के नए आयाम एवं नई सूचना प्रौद्योगिकी के बारे में पढ़ा है । जनसंचार और संस्कृति के पारस्परिक संबंधों का जनसंचार के अध्ययन में खास महत्व है । जनसंचार एक ओर यदि

संस्कृति का अंग है तो वह संस्कृति के निर्माण और विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है । जनसंचार क्या है इसके बारे में इस इकाई में चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि इसके बारे में आप विस्तार से अन्य इकाइयों में पढ़ चुके हैं । हम इस इकाई में खासतौर पर संस्कृति के बारे में अध्ययन करेंगे । संस्कृति क्या है और जनसंचार के संदर्भ में संस्कृति के किन-किन पहलुओं पर विचार करने की आवश्यकता है इसके बारे में भी आप अध्ययन करेंगे । जनसंचार के बारे में बात करते हुए उसके तकनीकी, राजनीति, आर्थिक और सामाजिक पहलुओं पर विचार करना जितना जरूरी है उससे कम जरूरी नहीं है उसके सांस्कृतिक पहलुओं के बारे में विचार करना ।

जनसंचार के विकास का संबंध सांस्कृतिक विकास से बहुत गहरा है इसे प्राय: भुला दिया जाता है । उदाहरण के लिए जनसंचार का सबसे प्रभावी और प्राचीन रूप भाषा है । लेकिन भाषा सांस्कृतिक आदान-प्रदान का भी एक सशक्त माध्यम है । कोई भाषा कितनी विकसित है इससे इस बात का भी पता लगता है कि वह समाज के सांस्कृतिक रूप में कितनी विकसित है । भाषा में ठहराव या जड़ता तभी आती है जब वह नए माहौल और नई चुनौतियों को व्यक्त करने के लिए तैयार नहीं होती । उसमें दूसरी भाषाओं से ग्रहण करने और नए भावबोध और विचारबोध को व्यक्त करने की कितनी क्षमता है? यही बात जनसंचार के बारे में भी लागू होती है । किसी देश में यह मुमकिन है कि जनसंचार के नवीनतम संसाधन मौजूद हो लेकिन उसके बावजूद वह देश सांस्कृतिक दृष्टि से दरिद्र हो इसलिए जनसंचार का विकास होगा ही। दरअसल इनके बीच का संबंध जटिल किस्म का है और उसका अध्ययन सावधानी से करने की जरूरत है । इस इकाई में इस बात को ध्यान में रखकर जनसंचार एवं संस्कृति के अंत:संबंधों पर विचार किया गया है ।

14.2 संस्कृति की अवधारणा

संस्कृति को परिभाषित करना आसान नहीं हैं । आमतौर पर संस्कृति का मतलब यह समझा जाता है कि संस्कृति साहित्य और कला के क्षेत्र में उत्कृष्ट रचनात्मकता और उपलब्धियों का नाम है । अंग्रेजी में यह शब्द 'कल्टिवेट' से निःसृत हुआ है जिसका मतलब होता है खेती करना या जोतना । इस प्रकार संस्कृति के अंग्रेजी पर्याय कल्चर का संबंध कृषि से जुड़ता है । हिंदी में संस्कृति शब्द संस्कृत भाषा से लिया गया है और इसमें संस्कार का भाव निहित होता है । संस्कार का मतलब ऐसे भाव से होता है जो मनुष्य परंपरा से अर्जित कर उसे परिष्कृत रूप में अपने मानस में बैठा लेता है और उसके व्यवहार को ये संस्कार काफी हद तक निर्धारित करते हैं । इस तरह विचार करने पर कल्चर और संस्कृति अपने मूल में एक ही तरह के अर्थ को व्यक्त करते प्रतीत होते है । संस्कृति इस अर्थ में उन सब बातों से जुड़ जाती है जिससे मनुष्य के मनुष्य होने की पहचान होती है । संस्कृति शब्द के विकास और प्रयोग का संबंध समाज, सामाजिक परिवर्तन और आदर्श समाज के बारे में लोगों के विश्वासों और मूल्यों से होता है (**कल्चर एंड सोसाइटी,** पृ.1) । चूंकि सभी समाज एक से नहीं होते, न ही आदर्श समाज की संकल्पना सभी की एक सी होती है और न ही सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया सभी समाजों में एक साथ और एक-सी घटित होती है इसलिए संस्कृति का स्वरूप भी सभी समाजों में और सभी समय में एक-सा नहीं होता ।

आधुनिक समाजों का अध्ययन हमें बताता है कि मानव जाति का विकास प्राणी जगत के विकास के अंग के रूप में हुआ है । लेकिन दूसरे प्राणियों से मानव व्यवहार का मूलभूत अंतर यही है कि उसका विकास केवल जैविक रूप में ही नहीं हुआ है बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक रूप में भी हुआ है ।

मनुष्य समाज में रहकर ही संस्कृति को सीखता और संप्रेषित करता है । मनुष्य में यह क्षमता होती है कि वह अकेले और समूह में प्रतीकों का निर्माण कर सकता है और प्रतीकों के माध्यम से संप्रेषित कर सकता है । प्रतीकों के निर्माण और उसके संप्रेषण के जरिए ही व्यक्ति संस्कृति का विकास करता है । संप्रेषण की क्षमता तो सभी प्राणियों में होती है लेकिन संकेतों के माध्यम से संप्रेषण की क्षमता सिर्फ मनुष्य में होती है । प्रतीकों के प्रयोग के जरिए मनुष्य वस्तुओं, विचारों और संबंधों पर अपने अर्थ और मूल्य आरोपित करता है (**कल्चर एंड सोसाइटी, पृ. 3**) । इसी प्रक्रिया में संस्कृति के विभिन्न रूप हमारे सामने आते हैं ।

समाज और संस्कृति के इन अंत:संबंधों को समझते हुए हम कह सकते हैं कि संस्कृति मानव व्यवहार के प्रत्येक क्षेत्र से संबंध रखती है । संस्कृति कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसे जीवन और जीवन से जुड़ी गतिविधियों से काटकर देखा या समझा जा सकता है । वह तो मनुष्य जीवन के प्रत्येक क्रियाकलाप में समाहित है । मनुष्य का पहनना-ओढ़ना, खाना-पीना, रचना-सोचना, बोलना, लिखना, कौन-सा ऐसा कार्य है जिसमें संस्कृति अभिव्यक्त नहीं होती या जिससे संस्कृति का निर्माण नहीं होता । प्रत्येक जातीय समुदाय की अपनी लंबी सांस्कृतिक परंपरा होती है । उसी परंपरा से उसकी संस्कृति का विशिष्ट स्वरूप बनता है । लेकिन यह निर्माण न तो एकाकी होता है और न ही एक आयामी रूप में । यह उस समुदाय के सामूहिक प्रयत्नों की अभिव्यक्ति होता है जो स्वयं निरंतर विकसित होती हुई संस्कृति को भी विकसित करती है । लेकिन ऐसा करते हुए वह दूसरे जातीय समुदायों के संपर्क में भी आती है और इस प्रक्रिया में उसने रिश्ता बनाते हुए अपनी संस्कृति में उनके प्रभावों को ग्रहण भी करती है और उन समुदायों पर अपना प्रभाव भी छोड़ती है । संस्कृति के निर्माण की सतत प्रवहमान प्रक्रिया है जिसमें वह निरंतर कुछ पुराना छोड़ती और नया ग्रहण करती हुई चलती है (**संस्कृति और समीक्षा के सवाल, पृ.3**) ।

संस्कृति के बारे में जब हम विचार करते हैं तो हम वस्तुत: मानव व्यवहार के बारे में बात कर रहे होते हैं । हमारा सामाजिक जीवन उसी तरह नहीं घटित होता जिस तरह प्राकृतिक जगत में वस्तुएं और घटनाएं घटित होती हैं । मनुष्य जीवन में विभिन्न प्रकार के उद्‌गार, प्रतीक, पाठ और कला संबंधी गतिविधियां और अभिव्यक्तियां होती हैं । वे अर्थवान होती हैं । मनुष्य उन्हें रचता हे, रचे हुए को समझने की कोशिश करता है और रचने और ग्रहण करने की प्रक्रिया में उनकी व्याख्या भी करता है (**आइडियोलॉजी एंड मोडर्न कल्चर, पृ.122)** । यदि इस बात को हम दृष्टि में रखते हैं तो समझ सकते हैं कि संस्कृति का क्षेत्र देश और काल दोनों रूपों में असीमित है । कई बार संस्कृति को सभ्यता के साथ एकमेक कर दिया जाता है । अठारहवीं-उन्नीसवीं सदी के जर्मन दार्शनिकों और इतिहासकारों ने पहली बार संस्कृति को सभ्यता से भिन्न रूप में परिभाषित किया । संस्कृति को इन्होंने ऐसी प्रक्रिया के रूप में देखा जिसका कई मामलों में बौद्धिक या आत्मिक प्रक्रिया के विकास से संबंध था । इस अवधारणा को बाद के नृशास्त्रियों ने एक विशिष्ट समाज या ऐतिहासिक कालखंड में विश्वासों, रिवाजों, परंपराओं, आदतों और व्यवहारों के लक्षणों की विविध व्यवस्थाओं से जोड़कर देखा । जॉन बी. थांपसन ने इसे संस्कृति की वर्णनात्मक अवधारणा नाम दिया है । इससे भिन्न वे संस्कृति की प्रतीकात्मक अवधारणा का भी उल्लेख करते हैं । इस अवधारणा के अनुसार प्रतीकात्मक परिघटना एक सांस्कृतिक परिघटना है । इस अवधारणा के अनुसार संस्कृति का अध्ययन अनिवार्य रूप से प्रतीकों और प्रतीकात्मक गतिविधि की व्याख्या के साथ जुड़ा है (वही पृ. 123)। संस्कृति की चौथी अवधारणा

को थांपसन ने सरंचनात्मक अवधारणा नाम दिया है । इस अवधारणा के अनुसार सांस्कृतिक अवधारणा को संरचनात्मक संदर्भो में प्रतीकात्मक रूप में समझा जा सकता है । इसके अनुसार सांस्कृतिक विश्लेषण को प्रतीकात्मक रूपों के सामाजिक संदर्भ और अर्थपूर्ण संघटन के अध्ययन के रूप में व्याख्यायित किया जा सकता है (वही, पृ. 123) । इस प्रकार संस्कृति की अवधारणा को समझने की चार पद्धतियां मानी जा सकती हैं । 1. संस्कृति की क्लासिकल अवधारणा; 2. संस्कृति की वर्णनात्मक अवधारणा; 3. संस्कृति की प्रतीकात्मक अवधारणा; और 4. संस्कृति की संरचनात्मक अवधारणा ।

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं कि संस्कृति की अवधारणा पर विचार की शुरुआत सभ्यता के अर्थ में हुई थी । पहली बार संस्कृति की अवधारणा को सभ्यता से अलग अर्थ में ग्रहण करने की शुरुआत उन्नीसवीं सदी में हुई थी । सभ्यता जिसे अंग्रेजी में 'सिविलाइजेशन' कहा जाता है, उसका अर्थ है जिसका संबंध नागरिकों से है । अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में सभ्यता को इंगलैंड और फ्रांस में ऐसी प्रक्रिया के रूप में वर्णित किया गया जो मानव विकास की प्रगतिशील प्रक्रिया को बताता है । जो मानवजाति को बर्बरता और पाशविकता से दूर परिष्कार और व्यवस्था की ओर ले जाए (वी, पृ. 124)। आमतौर पर सभ्यता और संस्कृति को एक दूसरे के पर्याय के रूप में ग्रहण कर लिया जाता है लेकिन इतना तो लगभग माना ही जाता था कि इन दोनों का संबंध मानव विकास से है और आधुनिक युग में ज्ञानोदय (एनलाइटमेंट) के प्रभाव में मानवजाति निश्चय ही एक प्रगतिशील दिशा की ओर बढ़ रही है । जर्मनी में हालांकि ये शब्द कई बार विपरीत अर्थ में भी प्रयुक्त होते रहे हैं । जर्मनी में सभ्यता का नकारात्मक अर्थ लिया जाता है जबकि संस्कृति का सकारात्मक । इसके अनुसार, सभ्यता का संबंध आचरण की विनम्रता और परिष्कार से है जबकि संस्कृति का संबंध उन बौद्धिक, कलात्मक और आत्मिक उत्पादों से हैं जिनमें लोगों की वैयक्तिकता और रचनात्मकता अभिव्यक्त होती है (वही, पृ 124) ।

सभ्यता और संस्कृति के बारे में जब बात करते हैं तो आमतौर पर यह समझ लिया जाता है कि कुछ समाज दूसरे समाजों से ज्यादा 'सभ्य' और 'संस्कृत' होते हैं । इसी तरह ऐतिहासिक रूप से भी सभ्यता और संस्कृति के बारे में दो तरह की अवधारणा मिलती है । एक तो यह कि पहले मनुष्य ज्यादा सभ्य और सुसंस्कृत था और अब वह धीरे-धीरे पतन की ओर जा रहा है । दूसरी धारणा यह है कि मनुष्य अधिक सभ्य और अधिक सुसंस्कृत हो रहा है। इस दूसरी अवधारणा के पीछे एक वैज्ञानिक समझ भी काम करती है लेकिन इसे भी यांत्रिक रूप से स्वीकार कर लेना मिथ्या है यह सही है कि मानव आचरण के कई रूपों में लगातार परिवर्तन होते हैं । लेकिन इन आचरणों में हमेशा श्रेणीबद्धता या सभ्यता और असभ्यता को देखना ज्यादती होगी । मसलन, लड़कियों द्वारा जींस पहनना या सलवार-कुर्ता पहनने में दो परंपराओं का फर्क तो है लेकिन इसमें से एक को नैतिक और दूसरे को अनैतिक मानना न तो सभ्यता से संबंध रखता है औ न ही संस्कृति से । लेकिन इसके विपरीत स्त्री को पर्दे में रखने की प्रवृत्ति के मुकाबले पर्दा प्रथा का खत्म होना निश्चय ही अधिक सभ्य भी है और संस्कृत भीं इससे यह भी जाहिर होता है कि समाज में प्रचलित बहुत से रीति-रिवाज चाहे उन्हें परंपरा का समर्थन प्राप्त हो जरूरी नहीं कि वह संस्कृति के व्यापक अर्थ में उपयुक्त भी माना जाए ।

संस्कृति की विभिन्नताओं को उनकी विशिष्टताओं के संदर्भ में तो देखा ही जाना चाहिए । साथ ही उन मूल्यों के संदर्भ भी देखा जाना चाहिए जो लिंग, जाति, धर्म, नस्ल, क्षेत्र और भाषा के अंतर के बावजूद सभी पर समान रूप से लागू किए जा सकते हैं । कोई भी समाज यह कहकर अपने एक हिस्से के नागरिक अधिकारों को नहीं छीन सकता कि वह उसके समाज की परंपरा के अनुरूप है

या अनुरूप नहीं है । इसी तरह संस्कृति के क्षेत्र में यह प्रवृत्ति भी देखने को मिलती है कि जो समाज या देश दूसरों की तुलना में आर्थिक और राजनीतिक रूप से ज्यादा सशक्त होते हैं वे अपने को सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से दरिद्र और पिछड़ा मानने लगते हैं ।

संस्कृति के क्षेत्र में इन विरोधाभासों का परिणाम यह होता है कि एक ही समाज में संस्कृति के कई रूप हमारे सामने आते हैं । मसलन, हम अभिजात संस्कृति, लोकप्रिय संस्कृति, बुर्जुआ संस्कृति, सर्वहारा संस्कृति, भारतीय संस्कृति, पाश्चात्य संस्कृति, प्राचीन संस्कृति, आधुनिक संस्कृति, हिंदू संस्कृति, मुस्लिम संस्कृति, आदिवासी संस्कृति, दलित संस्कृति, ब्राह्मण संस्कृति आदि की बातें करने लगते हैं । संस्कृति के और भी कई रूपों की बात जोड़ी जा सकती है लेकिन सवाल यह है कि इससे हमें क्या संस्कृति को समझने में मदद मिलती है? संस्कृति को लेकर इस तरह की समस्याएं इसलिए उठती हैं क्योंकि प्राय: मानव आचरण के किसी एक पहलू को दूसरों के मुकाबले ज्यादा महत्वपूर्ण मान लिया जाता है । यदि हम इस बात को महत्व देंगे कि भारतीय संस्कृति में परिवार की अवधारणा का अधिक महत्व है इसलिए भारतीयों को संयुक्त परिवार की ओर वापस लौटना चाहिए तो हम समाज परिवर्तन की स्वाभाविक प्रक्रिया को अस्वीकार कर रहे होंगे । इसी तरह यह समझना कि औरतों को पर्दे में रखकर या उसे शिक्षा से वंचित करके कोई समाज अपनी संस्कृति की रक्षा कर रहा है तो हकीकत में वह अपने समाज में स्त्रियों के अधिकारों को कुचलने का काम कर रहा है । संस्कृति का हिस्सा वे जनतांत्रिक अधिकार भी हैं जो मानवजाति ने कड़े संघर्ष के बाद अर्जित किये हैं । बराबरी का सिद्धांत भी संस्कृति का ही एक हिस्सा है जिसके अनुसार सभी मनुष्य एक समान है और उसमें भेदभाव करना अनैतिक है इसलिए असंस्कृत भी है ।

14.3 जनसंचार और संस्कृति का अंतःसंबंध

संस्कृति के संदर्भ में हमने प्रतीकात्मक रूपों का उल्लेख किया था । जॉन बी. थांपसन के अनुसार, आधुनिक समाजों में प्रतीकात्मक रूपों के उत्पादन और प्रसार को मीडिया उद्योग की गतिविधियों से अलग नही किया जा सकता । मीडिया संस्थानों की भूमिका आधारभूत है और उनके उत्पादकों का दैनंदिन जीवन से व्यापक संबंध देखा जा सकता है । इसलिए इस बात की कल्पना करना आज मुश्किल है कि आज हम ऐसा जीवन जी सकते हैं जिसमें किताबें न हो, अखबार न हो, रेडियो और टेलीविजन न हो और दूसरे कई अनगिनत माध्यम न हों जिनके माध्यम से हमारे सामने रोजाना लगातार प्रतीकात्मक रूप पेश होते रहते हैं । हर दिन और हर सप्ताह अखबार, रेडियो और टेलिविजन हमारे सामने उन घटनाओं से संबंधित शब्दों, बिंबों, सूचनाओं और विचारों को प्रवाहित करते रहते हैं जो हमारे निकटस्थ सामाजिक परिवेश के परे घटित होते हैं । फिल्म और टेलीविजन कार्यक्रमों पर जो दृश्य दिखाए जाते हैं वे उन लाखों-लाख व्यक्तियों के लिए एक समान संदर्भ बन जाते हैं जिनका एक दूसरे से कोई संपर्क नहीं होता । लेकिन जो एक मध्यस्थ संस्कृति में भाग लेकर एक समान अनुभव, एक सामूहिक स्मृति के भागीदार बन जाते हैं (वही, पृ. 163) । थांपसन के अनुसार, जनसंचार ने उन हजारों साल पुराने रूपों को भी लोगों तक पहुंचाया है जिनको इससे पहले कभी इतने बड़े पैमाने पर उपलब्ध कराना मुमकिन नहीं हो सका था । हमारे सामने रामायण और महाभारत का उदाहरण

मौजूद है जिनको टेलीविजन सीरियल के कारण करोड़ों लोगों तक पहुंचाया जा सका । इनमें से ज्यादातर लोगों को शायद ही इन महाकाव्यों को पढ़ने का मौका मिल पाता ।

जनसंचार के माध्यम से जो संदेश प्रसारित होते हैं वे सिर्फ संदेश ही नहीं होते सांस्कृतिक संदेश होते हैं और उनका संप्रेषण सांस्कृतिक संप्रेषण के रूप में होता है । यह सांस्कृतिक संप्रेषण प्रतीकात्मक रूपों के माध्यम से होता हैं इसलिए जनसंचार और संस्कृति के अंत:सबंधों को समझने के लिए इन प्रतीकात्मक रूपों को समझना जरूरी है । प्रतीकात्मक रूप एक सामाजिक परिघटना है । ये प्रतीक के रूप में संप्रेषित होने के योग्य तभी समझे जा सकते हैं जब उन प्रतीकों को उस समाज के दूसरे लोग भी समझ सकते हैं । ऐसा कोई प्रतीक जिसका किसी व्यक्ति द्वारा उपयोग किया जाता है और जिसे किसी अन्य द्वारा नहीं समझा जा सकता तो उसका संप्रेषण भी संभव नहीं है । इसलिए विद्वान प्रतीकात्मक रूपों को सामाजिक परिघटना मानते हैं । सांस्कृतिक संप्रेषण के तीन पहलुओं का उल्लेख जॉन बी. थांपसन ने किया है- 1.- संप्रेषण का तकनीकी माध्यम; 2. संप्रेषण के संस्थागत साधन; और 3. संप्रेषण में शामिल देश-काल अंतराल । प्रतीकात्मक रूपों के विनिमय में ये तीनों पहलू अलग-अलग स्तरों पर जरूर शामिल होते हैं । जनसंचार का जैसे-जैसे विकास होता है इन पहलुओं के साथ नए-नए रूप जुड़ते जाते हैं और उनको नया महत्व मिलता जाता है । वे अलग-अलग रूपों में प्रतीकात्मक रूपों के निर्माण, उपभोगीकरण और प्रसार का विस्तार करने में भूमिका निभाते है ।

संचार का तकनीकी माध्यम प्रतीकात्मक रूपों का आधार होता है । संचार के भौतिक घटक ही प्रतीकात्मक रूपों के निर्माण और संप्रेषण को संभव बनाते हैं । मसलन लिखने के लिए कागज और कलम की जरूरत होती है जबकि रेडियो के लिए रेडियो नामक उपकरण के साथ-साथ रेडियो पर प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों का निर्माण और प्रसारण करने वाले यंत्रों की भी जरूरत होती है जो रेडियो स्टेशन पर लगे होते है । यही बात दूसरे माध्यमों पर भी लागू होती है । बिना इन भौतिक साधनों के संचार संभव नहीं है । संचार की यही बात दूसरे माध्यमों पर भी लागू होती है । बिना इन भौतिक साधनों के संचार संभव नहीं है । संचार के तकनीकी साधन कई कार्यों को संपन्न करते हैं । वे प्रतीकात्मक रूपों का निर्माण करते हैं । उनको ग्रहीता तक संप्रेषित करते हैं, उनका भंडारण करते हैं और उनका पुनरुत्पादन करते हैं या उनकी प्रतिलिपियां तैयार करते हैं । इसलिए तकनीकी साधनों की भूमिका संप्रेषण में बहुत महत्वपूर्ण होती है, इसे याद रखने की जरूरत है ।

संचार के ये तकनीकी माध्यम भागीदारी की प्रकृति और व्यापकता को भी तय करते हैं । प्रत्येक मीडिया का उपयोग करने में व्यक्ति की अलग-अलग क्षमताओं का प्रयोग करना पड़ता है । यानी उन प्रतीकात्मक रूपों में निहित संकेतों को विसंकेतीकरण करने में अलग-अलग तरह के माध्यम अलग-अलग तरह की क्षमताओं और कौशलों की मांग करते हैं । मसलन, प्रिंट मीडिया में लिखित भाषा का प्रतीकात्मक रूपों के रूप में इस्तेमाल होता है जबकि रेडियो में उच्चरित भाषा और ध्वनियों का प्रयोग होता है । टेलिविजन में दृश्य रूपों की भूमिका केंद्रीय होती है । टेलीविजन और सिनेमा में दृश्य रूप की भिन्नता सूक्ष्म स्तर की होती है । लेकिन इसकी जानकारी के बिना इन माध्यमों का प्रयोग प्रभावशाली ढंग से नहीं किया जा सकता ।

प्रतीकात्मक रूपों के विनिमय में प्राय: संप्रेषण के संस्थागत साधन शामिल होते हैं । जनसंचार के संसीनीकरण का मतलब है, सांस्कृतिक उत्पाद का संगठन और इनसे जुड़े लोगों की भूमिका का स्पष्ट निर्धारण । आमतौर पर इसे सांस्कृतिक उत्पाद के बाहरी कारक के रूप में देखा जाता है और

उत्पादन के ऊपर पड़ने वाले इसके प्रभाव को कम करके आंका जाता है । इसे साहित्य के उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है । किसी कवि के लिए कविता लिखना एक ऐसा काम है जिसके लिए उसे किसी बाहरी संगठन से जुड़ना जरूरी है । भाषा की जानकारी और कागज कलम के सहारे से वह आसानी से कविता लिख सकता है । वह लोगों के बीच जाकर अपनी कविता सुना सकता है, उसे किसी दूसरे माध्यम की जरूरत नहीं है । लेकिन ऐसे में उसकी कविता बहुत कम लोगों तक पहुंच सकेगी । इस प्रकार उसका कविता लिखना जनसंचार का माध्यम नहीं बन सकेगा । इसके लिए उसे कुछ दूसरे सहारे लेने होंगे । मसलन, अपनी कविताओं को पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित करवाना या उनको पुस्तक के रूप में प्रकाशित करना । जैसे ही कवि इस तरह के माध्यमों का सहारा लेता है, तो मामला उसके और श्रोताओं तक ही सीमित नहीं रहता । इसके बीच, कुछ और एजेंसियां आ जाती हैं संपादक, प्रकाशक, वितरक, दूकानदार, हॉकर आदि । संस्थानीकरण एक अनिवार्य प्रक्रिया है । इसके कारण प्रतीकात्मक रूपों के निर्माण और संप्रेषण तक की प्रक्रिया का व्यवस्थित ढांचा बन जाता है । लेकिन इसका नकारात्मक पहलू यह है कि संप्रेषित किया जाने वाला संदेश कौन सा हो, किस रूप में हो और किन तक संप्रेषित हो इसका भी निर्धारण भी व्यवसाय और संस्थान की जरूरत के अनुसार होने लगता है (**जनसंचार माध्यमों का वैचारिक परिप्रेक्ष्य**, पृ.63) लेकिन जनसंचार के संस्थानीकरण की यह प्रक्रिया समाज व्यवस्था के एक हिस्से के रूप में होती है इसलिए सामाजिक व्यवस्था में जनसंचार अपनी एक जगह बना लेता है ।

सांस्कृतिक संप्रेषण का तीसरा पहलू संचार में शामिल देश-काल अंतराल है । संचार की कोई भी गतिविधि देश-काल में घटित होती है लेकिन जिस देश-काल में वह घटित होती है वह वहीं तक सीमित नहीं रहती । अलग-अलग माध्यमों में वह उस संदर्भ से अलग-अलग स्तरों पर विलग हो जाती है । मसलन, जब हम किसी फिल्म का गाना सुनते हैं जो आज से बीस, तीस या चालीस साल पहले गाया गया था तो वह अपने गाये जाने वाले समय से एक अंतराल पैदा कर चुका है । यही नहीं वह जिस जगह गाया था उससे भी अपना संबंध छोड़ चुका है । इसी प्रकार जब रेडियो पर समाचार सुनते हैं जो उसी समय दिल्ली में पढ़ा जा रहा है और किसी अन्य शहर में सुना जा रहा है तो यह संचार ही है जिसने यह संभव बनाया है कि वह समाचार सैकड़ों मील की यात्रा करता हुआ दूसरे स्थान पर बैठे हुए लोगों तक पहुंच कर संप्रेषित हो रहा है । संप्रेषण के उत्पादन पर इस प्रक्रिया का गहरा प्रभाव पड़ता है । यदि समाचारों की एक ही अवधि में हजारों मील दूर साथ-साथ सुना जाना संभव है तो इसका मतलब यह है कि हजारों मील में फैले हुए लोगों के बीच समान अभिरुचि वाले समाचारों का प्रसारण एक सामान्य संप्रेषण प्रक्रिया का रूप धारण कर लेगा । इसी को जॉन वी. थांपसन प्रतीकात्मक रूपों के देश-काल में उपलब्धता का विस्तार नाम देते हैं (**ऑइडियालॉजी एंड मॉडर्न कल्चर, पृ. 169**) । जाहिर है कि यह उपलब्धता का विस्तार जैसा कि हम ऊपर चर्चा कर चुके हैं माध्यम की तकनीकी विशिष्टता और उससे जुड़े संस्थानों के स्वरूप पर निर्भर करेगा ।

यह हम पहले ही कह चुके हैं कि जनसंचार माध्यमों के द्वारा जो संदेश संप्रेषित होते हैं उनका संबंध संस्कृति के क्षेत्र से होता है । संस्कृति को ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो हमारे सामाजिक अनुभवों को अर्थ देती है और जिससे अर्थ निःसृत होता है । संस्कृति को परिभाषित करते हुए हमने कहा था कि वह मानव गतिविधि के प्रत्येक क्षेत्र में व्याप्त होती है । संस्कृति कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसे जीवन और जीवन से जुड़ी गतिविधियों से काटकर देखा जा सकता है । जेम्स

केरी ने ठीक ही कहा है कि सामाजिक जीवन सत्ता और व्यापार से ज्यादा बड़ी चीज है । इसमें हमारे सौंदर्यबोधीय अनुभव, धार्मिक विचार, निजी मूल्य और संवेदनाएं और बौद्धिक विमर्श शामिल होते हैं । संस्कृति वस्तुत: एक प्रक्रिया है, लेकिन ऐसी प्रक्रिया जिसे मनुष्य दूसरे मनुष्यों के साथ भागीदार बनकर अर्जित करता है । संस्कृति अपने को कई रूपों में व्यक्त करती है और इनमें से जनसंचार माध्यम एक महत्वपूर्ण रूप है । संक्षेप में, कह सकते हैं कि संस्कृति का निर्माण सामूहिक रूप में होता है और वह सामूहिक रूप में ही जीवित रहती है । वह अपने को सांकेतिक रूपों में अभिव्यक्त करती है । वह गतिशील और परिवर्तनशील होती है और दिक् और काल में संप्रेष्य होती है । वह विभिन्न सामाजिक संस्थाओं के साथ अंतर्क्रिया करती हुई अपने को व्यवस्थित रूप प्रदान करती है । यहां यह भी ध्यान रखने की जरूरत है कि विभिन्न जातीय समुदायों की अपनी सांस्कृतिक परंपरा होती है और इन जातीय समुदायों से राष्ट्रीय संस्कृति का और इनके समुच्चय से मानव संस्कृति का विकास होता है ।

जनसंचार के संदर्भ में सांस्कृतिक प्रश्नों पर विचार करते हैं तो कई मुद्दे उभर कर सामने आते हैं । जनसंचार और जन संस्कृति के संबंधों का सवाल भी उठता है । जनसांस्कृतिक रूपों पर संचार प्रौद्योगिकी का प्रभाव किस रूप में पड़ता है? क्या जनसंचार संस्कृति को उपभोक्ता वस्तु में बदल देता है? भूमंडलीकरण के चलते क्या संस्कृति के स्थानीय रूपों की पहचान के खत्म होने का खतरा पैदा हो गया है? संस्कृति के उद्योग बनने की प्रक्रिया जनसंचार और संस्कृति के संबंधों पर विचार करने के संदर्भ में कितनी महत्वपूर्ण है और उसका सांस्कृतिक उत्पादों पर किस तरह का असर पड़ता है? जब हम जनसंचार के संदर्भ में संस्कृति की बात करते हैं तो अपसंस्कृति का सवाल भी सामने आता है । साथ ही लिंग, नस्ल, जाति अल्पसंख्यक आदि समूहों से संबंधित सवाल भी महत्वपूर्ण बन जाते है । इसी इकाई में आगे हम इनसे संबंधित कुछ पहलुओं पर विचार करेंगे ।

सांस्कृतिक वर्चस्व का सवाल-जनसंचार और संस्कृति के अंत:संबंध का एक महत्वपूर्ण पक्ष वर्चस्व के सवाल का है। मीडिया पर शासक वर्ग की विचारधारा का वर्चस्व होता है । यह वर्चस्व आरोपित नहीं होता बल्कि वह इस रूप में मौजूद होता है कि जैसे वह अत्यंत स्वाभाविक, सर्वस्वीकृत और आम अनुभव का हिस्सा है । उसके प्रति आम सहमति कायम हुई प्रतीत होती है और बौद्धिक विमर्श के संदर्भ में इसे व्याख्यायित करने का काम इटली के प्रसिद्ध मार्क्सवादी विचारक एंतोनियों ग्राम्सी ने प्रस्तुत किया है । वर्चस्व में यह निहित होता है कि जो भी यथास्थिति का विरोध करता है वह एक तरह का विरोध और विचलन है । जनसंचार यथार्थ को अपने ढंग से परिभाषित नहीं करता बल्कि वह सत्ता द्वारा दी गई परिभाषाओं को ही प्राथमिकता देता है । वर्चस्व के विचार को आगे विकसित करते हुए मीडिया विशेषज्ञ स्टुअर्ट हाल इसको तीन रूपों में प्रस्तुत करते हैं : पहला सत्ता के साथ जुड़ा वर्चस्ववादी संकेत, दूसरा समझौतापरस्त संकेत जो अनिवार्यत: मीडिया का अपना संकेत है जो उसकी भूमिका को सूचना के निष्पक्ष और व्यावसायिक वाहक के रूप में प्रस्तुत करता है । तीसरा विपक्षी संकेत है जो उनको प्राप्य होता है जो इस बात का चुनाव करते हैं या परिस्थितियां उन्हें इस दिशा में ले जाती है कि वे यथार्थ के बारे में संदेशों को भिन्न दृष्टि से देखें और घटनाओं के सरकारी अर्थो में निहित वास्तविक अर्थ को पढ़ का प्रयास करते हैं । यह मॉडल विचारधारा को जिस रूप में भेजा जाता है उसी रूप में उसे ग्रहण नहीं करता । जनसंचार के संदर्भ में इस वर्चस्व को समझना इसलिए जरूरी है कि इसी से हम सांस्कृतिक रूपों के प्रभाव की व्यापकता और दीर्घकालीनता को भी समझ सकते हैं |

14.4 भारत में जनसंचार की परंपरा

सभ्यता के आरंभ से ही संदेशों का एक दूसरे तक पहुंचाने और अपने विचारों और अनुभवों को भंडारित करने की जरूरत मानवजाति को महसूस हुई होगी ताकि वे अपने ज्ञान की साझेदारी न सिर्फ अपने बंधु-बांधवों के साथ कर सकें बल्कि उनको आगे आने वाली पीढ़ियों तक सुरक्षित पहुंचा सकें । अगर हम पाषाण युग पर विचार करें तो हम पाते हैं कि उस युग के लोगों के पास अपनी भावनाएं और विचार दूसरे तक पहुंचाने के लिए विकसित भाषा नहीं थी, कुछ ध्वनियां थी, जो काफी हद तक जानवरों की ध्वनियों से मिलती-जुलती रही होंगी । इसके साथ ही पत्थर के औजार थे और जिसे वे आने वाली पीढ़ियों के लिए छोड़ गये और जिसके आधार पर हम यह कहने की स्थिति में हैं कि पाषाण युग के लोगों का जीवन शिकार और रहने की जगह की तलाश में बीतता था । वे ध्वनियां जो आरंभ में पशुओं की ध्वनियों से मिलती-जुलती थी, उन्हीं से आरंभिक शब्दों का निर्माण हुआ होगा जो एक समुदाय के लोगों के बीच संदेशों के संप्रेषण का माध्यम बना । (दि एज ऑफ इनफोर्मेशन, स्टीफन सेक्सबी, मेकमिलन, लंदन, 1990, पृ. 41) पाषाण युग की समाप्ति तक इसमें बढ़ोतरी हुई होगी । लेकिन सूचनाओं को भंडारित करने का पहला प्रयास चित्रकला के द्वारा हुआ, जिन्हें हम गुफा चित्रों के सबसे पुराने उदाहरण हमें बीसवीं सदी ई.पू. के भी मिलते हैं । इन चित्रों को देखने से अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय के लोगों की जिंदगी किस तरह की थी । आमतौर पर इनमें शिकार करते हुए लोगों के चित्र बनाए गए हैं, जो यह बताते थे कि गुफाओं में रहने वाले पाषाणकालीन लोगों का जीवन किस तरह का था । गुफाओं में चित्र बनाने की यह कोशिश अपने अनुभव को विस्तार के साथ भंडारित करने और संप्रेषित करने की थीं यह आने वाली पीढ़ियों तक अपने अनुभवों को पहुंचाने की कोशिश थी । (वही, पृ.41-42) खास ध्वनियों का इस्तेमाल करते हुए अपने साथियों तक संदेश पहुंचाना, चित्र बनाना और औजारों का प्रयोग पाषाणकालीन संचार प्रौद्योगिकी के उदाहरण हैं । गुफा चित्रों से किसी घटना का विस्तार से चित्रण करना यह एक बहुत बड़ी सफलता थी । यह एक तरह से 'स्मृति को पढ़ना' (रीड ऑन मेमोरी) का पहला उदाहरण था । जहां पहले घटी घटना को क्षति के रूप में सुरक्षित रखने के लिए चित्रों का इस्तेमाल किया गया था । भारत में दक्षिण की नदी घाटियों की गुफाओं में मिले चित्रों में इस सभ्यता के अवशेष मिले हैं ।

इस नई खोज के बावजूद सूचना के संप्रेषण के लिए चित्रकला पूर्ण प्रौद्योगिकी नहीं थी । बहुत बड़े स्थान में अनुभव को चित्र के द्वारा पेश किए जाने के बावजूद उसमें व्यक्त संदेश काफी सीमित होता था । इसलिए यह जरूरी था कि किसी ऐसी प्रौद्योगिकी की खोज हो जिसके द्वारा संदेशों को ज्यादा विस्तार से और अधिक सही रूप में प्रस्तुत किया जा सके । लिखना इसी दिशा में उठाया गया क्रांतिकारी कदम था (वही, पृ.42) । लिखित भाषा का विकास सूचना के संप्रेषण और भंडारण के क्षेत्र में बहुत बड़ी उपलब्धि कही जा सकती है । गुफा की दीवारों पर बनाए गए चित्रों की परंपरा का विकास बाद में अभिव्यक्ति के लिए लकड़ी, पत्थर और दूसरी अपेक्षाकृत कम टिकाऊ चीजों पर भावांकन के रूप में हुआ । इन्हीं से लिखित भाषा का विकास हुआ होगा । जिसे हम लिपि कहते हैं, उसे आधुनिक रूपों तक पहुंचने में काफी समय लगा । चित्रों से चित्राक्षरों और उससे कीलाक्षरों से आधुनिक वर्णो तक की यात्रा जिससे हम आज परिचित है, एक तरह से सूचना टेक्नोलोजी के विकास की ही कहानी है । भारत और दूसरे प्राचीन सभ्यता वाले देशों में इस विकास के प्रमाण मिलते हैं । पुराने शिलालेखों,

लकड़ी, ताड़ और भोजपत्रों और दूसरे पदार्थों पर सुरक्षित रखे गए प्राचीन ग्रंथों और संदेशों से यह प्रमाण मिलता है कि वर्णमाला का विकास कितना पुराना होगा । मोहनजोदाड़ो की खुदाई में जो सिक्के आदि मिले हैं उन पर पाई गई लिपि अभी तक पढ़ी नहीं जा सकी है । इसी प्रकार भारत में प्रयुक्त होने वाली ब्राह्मी लिपि एक विकसित वर्णमाला होने का प्रमाण देती है । इसी ब्राह्मी लिपि से भारत की लगभग सभी लिपियों का विकास हुआ है (**जनसंचार माध्यमों का वैचारिक** परिप्रेक्ष्य, पृ.171-173) ।

वर्णमाला भाषा को दोहरे संकेत के रूप में प्रयुक्त करने की तकनीक हैं संचार के शक्तिशाली और लचीले उपकरण के रूप में भाषा और शब्दों की रचना का बाहुल्य होने की वजह यही है । अनुभवों और विचारों को भाषा के माध्यम से व्यक्त करने की क्षमता को देखते हुए यह महसूस किया जाना स्वाभाविक था कि लिखने का कोई ऐसा आधार हो जिस पर लिखना आसान भी हो और जिसे लंबे समय तक सुरक्षित भी रखा जा सके । यह काम कागज के द्वारा संभव हुआ। भारत में शुरू में ताड़ और भोजपत्र पर लिखा जाता था और उन्हें बांध दिया जाता था । इस तरह से बंधे होने के कारण ही उन्हें ग्रंथ कहा जाता था । पत्थर पर जिस छेनी के प्रयोग से अक्षर खोदे जातो थे, उसी ने कलम की खोज के लिए प्रेरणा का काम किया होगा ।

प्राक् आधुनिक युग में विकास के साथ और भी कई चीजों की खोज हुई । सूचना के प्रेषण के लिए पुराने जमाने में जब डाक व्यवस्था नहीं थी तो लोग उन यात्रियों के साथ अपने संदेश अपने प्रियजनों तक पहुंचाते थे । यह काम सिर्फ निजी संदेशों तक ही सीमित नहीं था । व्यापार के विकास के साथ कई ऐसे तरीके भी विकसित हुए थे जिन्हें हम आज बैंकिंग के माध्यम से पूरा करते हैं । मसलन, एक स्थान से दूसरे स्थान पर पैसा भेजना । जब डाक और बैंकिंग व्यवस्था का अभाव था तब व्यापारी हुंडी के माध्यम से एक स्थान से दूसरे स्थान पैसे भेजते थे । लेकिन जब व्यापार का विस्तार हुआ और संदेशों के आदान-प्रदान की आवश्यकता पहले से कई गुणा ज्यादा बढ़ गई तो यह जरूरी हो गया कि संचार के नए साधनों का विकास हो । इसी जरूरत ने जनसंचार के नए माध्यमों के विकास का मार्ग प्रशस्त किया ।

भारत में जनसंचार की परंपरा की कोई बहुत प्रामाणिक तस्वीर प्रस्तुत करना बहुत मुश्किल है । भाषा जिसे कि जनसंचार का एक प्राचीन और अभी भी सर्वाधिक प्रासंगिक माध्यम माना जाता है का प्रयोग भारत में बहुत पुराना है, यह ऊपर कहा जा चुका है । भाषा के अलावा जनसंचार के दूसरे साधनों का प्रयोग भी भारत में होता रहा है । आगे के उपभागों में हम इसके बारे में विचार करेंगे ।

भारतीय इतिहास को आमतौर पर तीन कालखंडों में बांटकर देखा जाता हैं प्राचीन, मध्य और आधुनिक । प्राचीन काल के अंतर्गत सभ्यता के आरंभिक विकास (पाषाण युग) से लेकर पांचवी सदी तक को शामिल किया जाता है । मध्ययुग को अंग्रेजों के आधिपत्य से पूर्व (अठारहवीं सदी के मध्य) तक और आधुनिक युग को अंग्रेजों के आगमन से आज तक माना जाता है । हम यहां इतिहास के इन कालखंडों के संदर्भ में जनसंचार के बारे में विचार करेंगे ।

14.4.1 प्राचीन काल में जनसंचार

मानव सभ्यता का इतिहास वैसे तो हजारों साल पुराना है लेकिन विधिवत इतिहास लिखने की शुरुआत तभी हुई जब मनुष्य ने भाषा और लिपि का विकास किया । इससे पूर्व के मनुष्य के बारे में जानकारी हमें उस युग के पत्थर के औजारों, गुफा चित्रों आदि से मिलती है । इनकी चर्चा हम पहले

कर चुके हैं । भारतीय इतिहास की वास्तविक शुरुआत हड़प्पा सभ्यता से होती है । हड़प्पा सभ्यता से जुड़े स्थानों की खुदाई से पुरातत्वविदों को ऐसे प्रमाण मिले हैं जिनसे यह मालूम पड़ता है कि ईसा पूर्व चौथी से तीसरी सहस्राब्दी में खेतीहर संस्कृतियां विद्यमान थी । हड़प्पा की सभ्यता नगर सभ्यता थी जो विकास की कई मंजिलें पार करने के बाद ही वहां तक पहुंची होगी । इससे यह जाहिर होता है कि यह सभ्यता इससे भी प्राचीन रही होगी । हड़प्पा की खुदाई में जो नगर जीवन के लक्षण मिले हैं उनमें महत्वपूर्ण हैं वे मुद्राएं जिन पर हड़प्पाकालीन लिपि में लिखा हुआ है । यद्यपि इसे अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है लेकिन इनसे तीन बातें स्पष्ट रूप से प्रमाणित होती है । एक, हड़प्पा सभ्यता के लोगों ने ऐसी भाषा विकसित कर ली थी जिसकी एक विकसत लिपि भी थी । दो, इन मद्राओं पर अंकित चिन्हों से यह जाहिर होता है कि वे गणित के अंकों से भी परिचित थे और तीन, वे भाषा और गणित का व्यापार सहित बहुत से कार्यों में व्यापक प्रयोग करते थे । हड़प्पा उत्खनन में प्राप्त मुद्राओं और बर्तनों पर तरह-तरह के पशुओं के चित्र भी मिले हैं । विकसित भाषा, गणित का ज्ञान और चित्रों का उपयोग यह बताने के लिए पर्याप्त है कि ये संप्रेषण के माध्यम के मुख्य साधन थे और मिट्टी के बर्तनों तथा मुद्राओं पर इनका अंकन इसी बात को प्रमाणित करता है ।

भाषा का विकास प्राचीन भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग रहा है । महान् वैयाकरण पाणिनी की पुस्तक 'अष्टाध्यायी' जिसकी रचना पांचवीं सदी ई.पू. मानी जाती है, में इससे पूर्व के कई आचार्यों का उल्लेख किया गया है । यही नहीं इस पुस्तक में उन्होंने कई भाषाओं के बारे में लिखा है जिससे यह भी जाहिर होता है कि वे संस्कृत सहित कई अन्य भाषाओं से परिचित थे । भारत में विभिन्न भाषाई परिवार मौजूद रहे हैं । सम्राट अशोक (ई.पू. तीसरी सदी) के शिलालेख जो ज्यादातर ब्राह्मी लिपि में है दुनिया की प्राचीनतम लिपियों में से है । ऋग्वेद जिसका रचनाकाल ई.पू. एक सहस्राब्दी से अधिक माना जाता है, उसमें नाटक के पूर्व रूपों का उल्लेख मिलता है । ऋग्वेद का संवाद स्रोत नाटक के पूर्व रूप का प्रमाण देता है । 'अष्टाध्यायी' के रचयिता भी नाटक विधा से परिचित थे । नाटक और कविता साहित्य की ऐसी विधाएं हैं जिनका विकास भाषा के विकास के साथ आरंभ हो गया था । इन साहित्य रूपों के द्वारा लोग अपने समय और समाज के बारे में अपनी सोच और धारणाओं को रचनात्मक रूप में पेश करते थे और आगे आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित छोड़ जाते थे । आज उस काल की इन रचनाओं से हमें उस दौर के सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन की जानकारी मिलती है ।

इस दृष्टि से महाभारत और रामायण महाकाव्यों का उल्लेख करना आवश्यक है । ऐसा माना जाता है कि इनको ई. पू. चौथी शताब्दी से चौथी शताब्दी ई. के बीच लिपिबद्ध किया गया होगा । लेकिन इन महाकाव्यों में शामिल बहुत से प्रसंग इससे भी हजार साल पहले के हो सकते हैं । संप्रेषण के माध्यम के रूप में महाभारत के एक प्रमुख पात्र संजय का उल्लेख यहां जरूरी है । महाभारत युद्ध के दौरान संजय अंधे धृतराष्ट्र को उस युद्ध का आंखोंदेखा हाल सुनाता है । स्वयं संजय युद्ध के मैदान में मौजूद नहीं है बल्कि उसे जो दिव्यदृष्टि मिली हुई है उसी के कारण वह यह वर्णन करने में सक्षम होता है । ऐसी दिव्यदृष्टि की परिकल्पना यही बताती है कि उस काल में भी मनुष्य ऐसी किसी शक्ति के बारे में सोचता था जिसके द्वारा वह दूर घट रही घटनाओं की तत्काल जानकारी प्राप्त कर सके । हजारों साल बाद यह शक्ति मनुष्य को रेडियो और टेलीविजन के द्वारा प्राप्त हुई । संदेश भेजने के माध्यम के रूप में भारत में आने-जाने वाले पथिकों के अलावा घुड़सवारों और कबूतर जैसे पक्षियों का प्रयोग

किया जाता था । संस्कृत के महाकवि कालिदास के काव्य मेघदूत में यक्ष अपनी पत्नी को बादलों के माध्यम से संदेश भेजता है । जाहिर है यह एक कवि की कल्पना है लेकिन यह इस बात का द्योतक जरूर है कि संदेश का भेजा जाना या प्राप्त करना एक महत्वपूर्ण कार्य था जिसकी कोई सामुदायिक व्यवस्था कायम नहीं थी ।

प्राचीन भारत में शिक्षा और शिक्षा संस्थानों का भी व्यापक प्रसार हुआ था । गुरुकुलों में दी जाती थी जहां विद्यार्थी अपने शिक्षक के साथ रहकर शिक्षा प्राप्त करते थे । बाद में कई बड़े-बड़े शिक्षा संस्थान स्थापित हुए जिनमें दूसरे देश के विद्यार्थी भी शिक्षा प्राप्त करने की सुविधा समाज के सभी वर्गों को समान रूप से प्राप्त थी । महाभारत में एकलव्य की कथा यह बताती है कि आदिवासी लोगों को यह शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार नहीं था । यही नहीं यदि वह अपने बलबूते पर कुछ ज्ञान और कौशल हासिल भी कर लेता तो उसको उसकी कीमत चुकानी पड़ती थी । रामायण में शंबूक की कथा भी हमें यही बताती है कि शिक्षा के क्षेत्र में भी वर्ण व्यवस्था इतनी ही मजबूत और क्रूर थी । राम द्वारा शंबूक की हत्या इसीलिए कर दी गई क्योंकि उसने उन वेदों का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न किया था जिसे प्राप्त करने से 'शूद्रों' और स्त्रियों को वंचित कर दिया गया था । बौद्ध और जैन धर्मों का उत्थान इसी तरह के भेदभाव के कारण हुआ था जिन्होंने वर्ण व्यवस्था का विरोध किया था । लेकिन बौद्ध धर्म के पतन होने के बाद जब दुबारा ब्राह्मण धर्म स्थापित हो गया तो भारत एकबार फिर शिक्षा और विज्ञान के क्षेत्र में पिछड़ने लगा ।

संचार के कुछ साधनों का प्रयोग राजा प्रजा तक अपना संदेश पहुंचाने के लिए करते थे । इनमें वे मुनादी प्रमुख होते थे जो गली-गली, मुहल्ले-मुहल्ले जाकर राजा के फरमान को पढ़कर सुनाते थे । इसके लिए वे ढोल और नगाड़ों का इस्तेमाल करते थे जिनको सुनकर लोग एकत्र होते थे । इसी तरह नगाड़ों का उपयोग दूर के स्थानों तक कुछ खास संदेशों का प्रेषण करने के लिए किया जाता था । यह प्रक्रिया मध्ययुग में भी जारी रही ।

14.4.2 मध्यकाल में जनसंचार

मध्यकाल में जनसंचार के विकास में कोई उल्लेखनीय बदलाव नहीं आया । मध्य युग में पश्चिम और मध्य एशिया से जो जातियां भारत में आईं उन्होंने यहां की राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था में कोई खास बदलाव नहीं किया । पहले की तरह शिक्षा अभी भी समाज के उच्च वर्गों और उच्च वर्णों तक ही सीमित थी । संचार के साधन पहले की तरह घुड़सवारों और पक्षियों के द्वारा ही उपलब्ध थे । आमतौर पर आम आदमी आने जाने वाले लोगों के जरिए ही अपने संदेश अपने संबंधियों और परिचितों तक भिजवाते थे । संचार का पहला सार्वजनिक प्रयास शेरसाह सूरी (1540-45) के समय में हुआ जिसने पहली बार डाक व्यवस्था की शुरुआत कराई ताकि भारत को पूर्व से पश्चिम के छोर तक जोड़ा जा सके । जाहिर है कि इस तरह के सड़क मार्गों के निर्माण से सिर्फ यातायात में ही सुविधा नहीं होती है बल्कि संचार में भी सुविधा होती है ।

मध्ययुग में साहित्य की किसी नई विधा का जन्म तो नहीं हुआ लेकिन नाटकों का विकास जरूर अवरुद्ध हुआ । इसका अर्थ यह नहीं था कि नाटक बिल्कुल समाप्त हो गये । जिन्हें लोक नाटक कहा जाता है वे तब भी खेले जाते थे । यहीं नहीं रामलीला, रासलीला आदि का इस दौर में अधिक विस्तार हुआ । बारहवीं सदी से सत्रहैवी सदी तक जिस भक्ति आंदोलन का दौर सारे भारत में चला वह यह भी बताता है कि जनसंचार के साधनों के अभाव के बावजूद भारत के विभिन्न क्षेत्रों में रहने

वाले लोगों का एक दूसरे से गहरा संपर्क था । इसने भारत को सामाजिक और सांस्कृतिक रूप में ऐक्यबद्ध रखने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की ।

इसी मध्ययुग में यूरोप की विभिन्न जातियां व्यापार के लिए भारत में आने लगीं । इनमें सबसे पहले पहुंचनेवालों में पुर्तगाली थे । सन् 1498 में केरल के कालीकट तट पर वास्को-द-गामा अपने दल-बल के साथ पहुंचा था । बाद में डच, अंग्रेज और फ्रेंच भी भारतभूमि पर पहुंचे और उन्होंने पहले तटवर्ती क्षेत्रों और फिर धीरे-धीरे भारत के अंदरूनी हिस्सों पर अपना अधिकार जमाना शुरू किया । इसमें सबसे अधिक सफलता अंग्रेजों को प्राप्त हुई जिन्होंने प्लासी के युद्ध (1757) में सिराजुद्दौला को पराजित कर अपने राज्य की नींव कायम की और लगभग दो सौ साल तक भारत में शासन किया। भारत के आधुनिक इतिहास की शुरुआत अंग्रेजों के शासन कायम करने और उसके विरुद्ध भारतीय जनता के संघर्ष से ही होती है |

14.4.3 आधुनिक काल में जनसंचार

जनसंचार के मामले में भारत अमरीका और यूरोप के विकसित देशों की तुलना में काफी पीछे रहा है । लेकिन पिछले दो दशक में इसका जिस तीव्रता से विकास हुआ है उससे यह संभावना व्यक्त की जा सकती है कि किसी और क्षेत्र में चाहे हम उतनी प्रगति न कर पाएं लेकिन संचार माध्यमों के क्षेत्र में हम पश्चिमी देशों से बहुत पीछे नहीं होंगे । आज हमारे देश में जनसंचार के सभी आधुनिक साधन मौजूद हैं । मुद्रित, श्रव्य और दृश्य तीनों तरह के माध्यमों का तेजी से विकास हुआ है । आज भारत में इंटरनेट का प्रयोग करने वालों की खासी बड़ी संख्या है । इसी तरह कम्प्यूटर के सोफ्टवेयर के क्षेत्र में भारत ने उल्लेखनीय प्रगति की है । आधुनिक माध्यमों के लिए जिन कृत्रिम उपग्रहों की जरूरत होती है उन्हें बनाने और अंतरिक्ष में स्थापित करने में भी भारत ने उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की है । जिससे भारत को रेडियो और टेलिविजन के प्रसार में ही नहीं बल्कि टेलीफोन और कम्पयूटर प्रणाली के नेटवर्क को फैलाने में भी उल्लेखनीय प्रगति मिली है । इन सबका हमारे विकास पर अनुकूल असर होने की आशा की जा सकती है । यह अवश्य है कि जनसंचार के आधुनिक साधनों का आविष्कार करने में भारत का कोई उल्लेख योग्य योगदान नहीं है । आजादी से पहले बेतार के तार की खोज करने में जगदीशचंद्र बोस का नाम लिया जा सकता है लेकिन इस खोज का श्रेय भी मार्कोनी के नाम ही इतिहास में दर्ज है क्योंकि भारत पराधीन होने के कारण वैज्ञानिक उपलब्धि के क्षेत्र में वे सुविधाएं प्राप्त नहीं कर सका जो उसके लिए जरूरी है । यह भी सही है कि आजादी के बाद भारतीय वैज्ञानिक जनसंचार के क्षेत्र में उसे देश के कोने-कोने में पहुंचाने में कामयाब रहे ।

आज भारत दुनिया में सबसे अधिक फिल्में बनाने वाला देश है । भारतीय टेलीविजन पर आज अमरीका के बाद सबसे अधिक चैनल उपलब्ध हैं और हिंदी व अंग्रेजी के अलावा वे अनेक भारतीय भाषाओं में भी उपलब्ध हैं । शायद ही दुनिया के किसी भी अन्य देश में इतनी अधिक भाषाओं में चैनल प्रसारित होते होंगे जितने कि भारत में होते हैं । हिंदी और कुछ अन्य भारतीय भाषाओं के चैनल दुनिया के बहुत से देशों में देखे जाते हैं । मुद्रण के क्षेत्र में भी भारत समाचारपत्रों और पुस्तकों के प्रकाशन में उल्लेखनीय प्रगति कर चुका है । मुद्रण के क्षेत्र में जो नवीनतम तकनीक उपलब्ध है वह भारत में उपयोग में लाई जा रही है और उसका बाजार भारत में विकसित हुआ है । कम्पयूटर के क्षेत्र में भारत की उपलब्धियों की चर्चा ऊपर की जा चुकी है ।

इसका अर्थ यह नही समझा जाना चाहिए कि भारत जनसंचार के क्षेत्र में विकसित देशों के समकक्ष आ चुका है । भारत में आधुनिक संचार माध्यमों की शुरुआत करने का श्रेय अंग्रेजों को जाता है जिन्होंने अपने शासन को सुचारु रूप से चलाने के लिए परिवहन और संचार के आधुनिक साधनों का इस्तेमाल भारत में शुरू किया था । उन्नीसवीं सदी के मध्य में उन्होंने रेलों का जाल बिछाना शुरू किया । पहले अखिल भारतीय स्तर पर डाक व्यवस्था आरंभ की और बाद में तार का सिलसिला आरंभ हुआ । फ्रांस में 1895 में फिल्म निर्माण के आरंभ के कुछ साल बाद ही भारत में भी फिल्म निर्माण से जुड़ी गतिविधियां आरंभ हो गईं । पहली भारतीय फिल्म 1913 में बनी । बीसवीं सदी के चौथे दशक में भारत में रेडियो के प्रसारण की शुरुआत हुई और छठे दशक में टेलीविजन की । उन्नीस सौ अस्सी के बाद टेलीविजन का तेजी से विस्तार हुआ और उन्नीस सौ नब्बे के बाद कम्प्यूटर का । यहां तक कि कुछ विद्वानों ने इसे भारत के संचार और सूचना के क्षेत्र में तीव्र गति से आगे बढ़ने का परिचायक माना है और इसे सूचना समाज बनने की दिशा में ठोस पहलकदमी कहा है । लेकिन इन सबके बावजूद सच्चाई यह है कि आज भी भारत के सभी गांवों में रोजाना डाक का वितरण नहीं होता है । टेलीफोन के तार सभी गांवों तक नहीं पहुंचे हैं । अभी भी लगभग एक तिहाई आबादी साक्षरता से वंचित है और सिर्फ पांच फीसदी ही विद्यार्थी उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में प्रवेश ले पाते हैं। भारतीय समाज में व्याप्त इन विषमताओं को सही परिप्रेक्ष्य में समझने की जरूरत है ।

भारतीय समाज में विकास की प्रक्रिया दो विपरीत दिशाओं में गतिशील है । एक ओर समाज का छोटा हिस्सा जिसका उत्पादन के साधनों, राजनीतिक सत्ता और नौकरशाही तंत्र पर किसी-न-किसी रूप में नियंत्रण है, वह तेजी से सूचना समाज की ओर बढ़ रहा है, तो दूसरी ओर भारतीय समाज का बहुमत अभी भी विकास के प्रायः सभी क्षेत्रों से बाहर है। वह अभी भी जीते रहने की बुनियादी जरूरतों को जुटाने के संघर्ष में ही मर-खप रहा है । समाज का जो हिस्सा सूचना समाज की ओर बढ़ रहा है वह भी इसके लिए पश्चिम के विकसित देशों पर काफी हद तक निर्भर है । मीडिया के भूमंडलीकरण पर विचार करते हुए अमरीकी मीडिया विशेषज्ञ रॉबर्ट डब्ल्यू. मैक्चेस्ने कहते हैं कि भूमंडलीय बाजार की यह मुख्य प्रवृत्ति है कि उसका झुकाव का अत्यधिक असमान रूप में विश्व भर में व्याप्त मीडिया प्रणाली के विकास की ओर रहता है । व्यावसायिक मीडिया बाजार उन लोगों को ही अपनी ओर खींचने की कोशिश करता है जिनके पास उनके उत्पादों को खरीद सकने योग्य पैसा हो, और जिनके पास खरीद सकने लायक पर्याप्त पैसा होता है, विज्ञापन भी उन्हें ही संबोधित होते हैं । यदि उन्हें कोई ऐसा बाजार नजर आता है तो वे शीघ्र ही उस ओर बढ़ते हैं । मेक्चेस्ने ने इस संदर्भ में भारत का उदाहरण प्रस्तुत किया है । उन्हीं के शब्दों में, 'भारत जैसा देश इसका प्रमाण है । 90 करोड़ की आबादी वाले इस देश की आधी से अधिक आबादी भूमंडलीय मीडिया बाजार के लिए अप्रासंगिक है और कई पीढ़ियों तक वह ऐसे ही अप्रासंगिक बनी रहेगी|' लेकिन संपन्न मध्यवर्ग का मामला दूसरा है । अकेले भारत में 25 करोड़ आबादी मध्यवर्ग के अंतर्गत आती है । डिन्ने के माइकेल आइजनर के अनुसार, 'यह एक बहुत ही बड़ा अवसर है ।' और यही वजह है कि पिछले एक दशक में भूमंडलीय मीडिया बाजार से उसे जोड़ने का सराहनीय प्रयास किया गया है । यही बात एशिया, मध्य पूर्व और दक्षिण अमरीका के उचच और मध्यवर्ग के बारे में भी कही जा सकती है ।' (दि ग्लोबल मीडिया, पृ.64) भारतीय समाज में सूचना और समाज के अंत:संबंधो को भी इन बुनियादी अंतर्विरोधों के प्रकाश में ही देखा जाना चाहिए ।

14.5 जनसंचार और जन संस्कृति

जनसंचार के साथ जन संस्कृति की संकल्पना भी सामने आई है । जन संस्कृति को प्राय: ऐसे लोगों की संस्कृति के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, जिनकी अभिरुचियां निम्न स्तर की होती हैं । यहां प्राय: दो तरह की धारणाएं देखने को मिलती हैं । एक तो यह कि साधारण लोगों को जन संस्कृति के ऐसे ही रूपों में आनंद मिलता है; यानी अभिजात संस्कृति और जन संस्कृति का फर्क अपरिहार्य है क्योंकि दोनों वर्गों की अभिरुचिया एक-सी नहीं हो सकतीं । दूसरा नजरिया यह है कि जन संस्कृति निम्न या विकृत होती है, लेकिन इसके लिए लोग उसे थोपते हैं । (**जनसंचार माध्यमों का वैचारिक परिप्रेक्ष्य, पृ.134**)

जनसंचार और जन संस्कृति के परस्पर संबंधों के संदर्भ में फ्रेंकफर्ट स्कूल की विचारधारा का उल्लेख आमतौर पर किया जाता है । फ्रेंकफर्ट स्कूल से संबंधित विचारकों ने ही सबसे पहले जनसंचार के संदर्भ में सांस्कृतिक प्रश्नों पर गहनता से विचार किया था । इन विचारकों में सबसे महत्वपूर्ण हैं-मेक्स होर्किमीर और थ्योडोर एडोर्नो । इसके साथ ही वाल्टर बेंजामिन और हर्बट मार्क्यूज की भी गणना की जाती है । इसके अनुसार, इजारेदार पूंजी अपनी कामयाबी के लिए जिन प्रमुख साधनों का इस्तेमाल करती है उनमें जन संस्कृति का स्थान सबसे ऊपर है । वस्तुओं, सेवाओं और विचारों के जनोत्पादन की संपूर्ण प्रणाली पूंजीवादी व्यवस्था में बेचे और खरीदे जाने के लिए होती है । यह व्यवस्था प्रत्येक वस्तु और विचार को जींस में बदल देती है और जो यह मानती है कि ललित कलाओं की सर्वोत्तम अभिव्यक्तियां हो या विरोधी या आलोचनात्मक संस्कृति सभी को बेचा जा सकता है । पूंजीवादी समाज में संस्कृति को जिस में बदल दिये जाने की धारणा में चाहे कितनी ही सच्चाई क्यों न हो यह मत इस अर्थ में पूरी तरह सच नहीं हैं कि समाज में सभी ने इस अवधारणा को स्वीकार कर लिया है । वस्तुत: यहां यह मान लिया गया है कि इजारेदार पूंजी इतनी बलवती है कि इसे संस्कृति के क्षेत्र में चुनौती दी ही नहीं जा सकती ।

जन के लिए अंग्रेजी में मास शब्द का प्रयोग किया जाता है । मास शब्द जनता और लोक से भिन्न अर्थ देता है। आमतौर पर मास शब्द लोगों के ऐसे समूह के लिए प्रयुक्त होता है जो किसी विवेकपूर्ण ढंग से और बहुत परिभाषित रूप में व्याख्यायित न की जा सकती हो । मसलन, किसी मेले को देखने के लिए उमड़ी भीड़ या किसी फिल्म के लिए उमड़ी भीड़ वस्तुत: मास के रूप में व्याख्यायित की जाती है । जाहिर है मास शब्द में जनता के प्रति एक तरह का हिकारत का भाव मौजूद रहता है । जन संस्कृति का अर्थ ही यह है कि ऐसी संस्कृति जो ऐसे जनसमूह के लिए हो जिनकी रुचियां निम्नस्तर की हों और जो संस्कारित न हो । जन संस्कृति के विपरीत अभिजात संस्कृति को रखा जाता है जिनकी रुचियां उच्चस्तरीय होती है और जिनके संस्कार शिष्ट होते हैं । जन संस्कृति और अभिजात संस्कृति के बीच यह भेद स्वयं अभिजात वर्ग द्वारा किया जाता है जो इस तरह अपनी सांस्कृतिक श्रेष्ठता को स्थापित करता है ।

जन संस्कृति के साथ-साथ लोकप्रिय संस्कृति का प्रश्न उपस्थित हो जाता है । आमतौर पर लोकप्रिय संस्कृति को इस रूप में परिभाषित किया जाता है कि जो संस्कृति लोकप्रिय हो वह लोकप्रिय संस्कृति है । लोकप्रियता से यहां तात्पर्य यह है कि जिससे ज्यादा से ज्यादा लोग आनंद प्राप्त करते हैं । लेकिन लोकप्रियता को परिभाषित करना इतना सरल नहीं है । यह मान लिया जाता है कि आज जिसे लोग सबसे ज्यादा पसंद करते हैं और जिसकी सबसे ज्यादा मांग करते हैं वही लोकप्रिय है । लेकिन

यह हमारा सामान्य अनुभव है कि जो आज अत्यंत लोकप्रिय है उसकी मांग कल बिल्कुल खत्म हो सकती है । क्या तब भी उसे लोकप्रिय कहा जा सकता है? आमतौर पर लतीफे सुनना सबको पसंद होता है लेकिन क्या वे रचनात्मक कहानी का स्थान ले सकते हैं? लोकप्रियता में आनंद पर बल रहता है और नए से बचने का प्रयत्न किया जाता है । यह माना जाता है कि जो नया होगा वह लोकप्रिय नहीं होगा लेकिन जो पुराना होगा वह भी लोकप्रिय हो यह आवश्यक नहीं है । इसलिए जनसंचार में लोकप्रियता के लिए लोगों की सोच को बिना किसी तरह से आघात पहुंचाए और भावनाओं को उद्वेलित किए ऐसे प्रतीकात्मक रूपों का इस्तेमाल किया जाता है जो ग्रहीताओं को सहज ही संप्रेष्य हो । यहां तक कि वे उन रचनात्मक प्रतीकात्मक रूपों को भी लोकप्रियता के ऐसे ढांचे में पेश करने की कोशिश करते हैं जिसे वे ज्यादा से ज्यादा लोगों को आनंद पहुंचाए भले ही इस क्रम में वे रूप विकृत हो जाएं।

जन संस्कृति और लोकप्रिय संस्कृति की यह सारी संभावनाएं जनसंचार की वजह से उत्पन्न हुई हैं । जनसंचार ने ऐसी प्रौद्योगिकी को विकसित किया है जिसके कारण इन रूपों का जनोत्पादन संभव हुआ है । जॉन बी थाम्पसन ने इस संबंध में उचित ही कहा है कि आधुनिक समाजों में प्रतीकात्मक रूपों का उत्पादन और प्रसार जनमाध्यम उद्योगों की गतिविधियों से अलग नहीं किया जा सकता । मीडिया संस्थानों की भूमिका इतनी बुनियादी है कि यह कल्पना करना भी मुश्किल है कि हम अपने रोजमर्रा के जीवन से उन्हें अलगा सकें । जनसंस्कृति के विभिन्न रूपों का प्रसार इसीलिए संभव हुआ है कि वह उनका बार-बार पुनरुत्पादन कर सकती है । प्रतीकात्मक रूपों की पुनरुत्पादकता ने ही जनसंचार के व्यावसायिक दोहन की व्यापक संभावना पैदा की है और इसी वजह से प्रतीकात्मक रूपों का पभोगीकरण हुआ है । जनसंचार के संस्थान इस संभावना को बढ़ावा भी देते हैं । जनसंचार के ज्यादातर रूप ऐसे हैं जिनमें लोगों की भागीदारी सामूहिक रूप से होती है । इनमें निष्पादक, तकनीशियन और दूसरी गतिविधियों से जुड़े लोग होते हैं जो किसी-न-किसी रूप में संदेशों के संकेतीकरण और विसंकेतीकरण में भूमिका निभाते हैं । इसी प्रकार संदेशों का ग्रहण आमतौर पर सामाजिक संदर्भ में होता है । लोग उन्हें समूह में या परिवार वालों के साथ देखते हैं । इस प्रकार सामूहिकता जनसंचार के सांस्कृतिक पहलू को प्रभावित करती है और कोशिश यह होती है कि वह जितने बड़े पैमाने पर संप्रेषित होनी है उतना ही वह सब तरह के लोगों की विशिष्टता को आहत किये बिना स्वीकार्य बन सके । इस प्रक्रिया में जनसंचार संस्कृति का एक ऐसा रूप विकसित करता है जो अपनी निजी विशिष्टता ही नहीं खोता बल्कि वह विरोध और असहमति के स्वरों को भी या तो हटाने के लिए मजबूर कर देता है या उसे डाइल्यूट कर देता है ।

14.6 संस्कृति उद्योग

जनसंचार माध्यमों के विकास ने संस्कृति को उद्योग का रूप दे दिया है । संस्कृति उद्योग की संकल्पना रखने का श्रेय फ्रेंकफर्ट स्कूल के विचारकों को है । उन्होंने संस्कृति उद्योग की प्रकृति और परिणतियों के बारे में विचार किया है । मेक्स हार्कीमर और ध्योडोर एर्डोनो ने संस्कृति उद्योग पद का प्रयोग सांस्कृतिक रूपों के उपभोगीकरण के संदर्भ में किया है जिसका विकास यूरोप और अमरीका में उन्नीसवीं सदी के अंत में और बीसवीं सदी के आरंभ में मनोरंजन उद्योग के उत्थान के साथ हुआ था । उन्होंने इस संदर्भ में फिल्म, रेडियो, टेलीविजन, लोकप्रिय संगीत, पत्रिकाओं और समाचारपत्रों के बारे में विचार विमर्श किया है । इन विचारकों का मानना है कि मनोरंजन उद्योगों के पूंजीवादी उद्यम के रूप में पनपने का परिणाम सांस्कृतिक रूपों के मानकीकरण और विवेकीकरण में निकला

है । इस प्रक्रिया का परिणाम यह हुआ है कि व्यक्ति इन उत्पादों के बारे में आलोचनात्मक और स्वायत्त रूप में सोचने और कर सकने की क्षमता खोता जा रहा है । इन उद्योगों के द्वारा जो सांस्कृतिक वस्तुओं का उत्पादन हो रहा है वह पूंजीवादी संचयन और मुनाफा हासिल करने के लिए हो रहा है । वे जनता द्वारा स्वत:स्फूर्त ढंग से नहीं पनप रहे हैं बल्कि जनता द्वारा उनका व्यापक पैमाने पर उपभोग हो सके इस नजरिए से उनका उत्पादन हो रहा है (**आइडियोलॉजी एंड मॉडर्न कल्चर, पृ. 98)** । संस्कृति उद्योग द्वारा जो उत्पादन होता है वह अपने आंतरिक गुणों और कलात्मक रूप के तौर पर नहीं पहचाने जाते बल्कि उपभोक्ता उत्पादन और विनिमय के निगम तर्क (कारपोरेट लॉजिक) द्वारा पहचाने जाते हैं ।

हर्बट मार्क्यूज ने अपनी पुस्तक 'वन डाइमैंशनल मेन' में लिखा है कि विकसित पूंजीवाद में उत्पादन की प्रत्यक्ष विवेकशीलता ही सामाजिक व्यवस्था को उसी रूप में आलोचना के लिए निरापद बना देती है । व्यवस्था अपनी सफलता, वस्तुओं को उत्पादित करने की अपनी क्षमता से 'बेचती' है । उनके अनुसार, "उत्पादकीय उपकरण और वस्तुओं और सेवाओं जिसके द्वारा यह (विकसित पूंजीवाद) पूर्ण सामाजिक व्यवस्था को थोपने या 'विक्रय' का उत्पादन करती है । जन परिवहन और जन संचार के साधनों, आवास, भोजन और वस्त्र की उपभोक्ता वस्तुओं, मनोरंजन और सूचना के अप्रतिरोधी उत्पादन अपने साथ निर्धारित प्रवृत्तियों और आदतों, निश्चित बौद्धिक और भावात्मक प्रतिक्रियाओं को लाते हैं जो उपभोक्ताओं को उत्पादकों से कमोबेश खुशी से बांधे रखते हैं और बाद वाले (मनोरंजन और सूचना उत्पादन) के जरिए वह संपूर्ण (व्यवस्था) से बंधा रहता है । उत्पाद शिक्षित करते हैं और जोड़तोड़ करते है; वे मिध्या चेतना को प्रोत्साहित करते हैं जो कि इस मिथ्यात्व के विरुद्ध प्रतिरक्षित होते हैं... इस प्रकार एक आयामी विचार और व्यवहार का पैटर्न उभरता है जिसमें कि विचार, आकांक्षाएं और उद्देश्य, अपनी अंतर्वस्तु के द्वारा विमर्श और व्यवहार की स्थापित सार्वभौमिकता के पार चले जाते हैं और जो या तो इस सार्वभौमिकता की शर्तों पर अमान्य हो जाता है या बलहीन हो जाते हैं ।" (मार्क्यूज का कथन, **कल्चर, सोसाइटी इंड दि मीडिया** से उद्धृत, पृ. 43) । मार्क्यूज यह तर्क देते हैं कि उत्पादन की व्यवस्था की यह प्रवृति इसे विनाश से बचाती है । इसी कारण सार्वजनिक रूप से जो राजनीतिक मुद्दे विचार विमर्श के लिए सामने आते है वे व्यवस्था का प्रबंध करने में कौन-सी तकनीक सबसे बेहतर साबित होगी, अस सवाल तक ही सीमित रहते है । इस प्रक्रिया में वे वैकल्पिक राजनीतिक साध्य जो इनके परे जाते हैं, अपने आप बाहर हो जाते हैं (वही, पृ.43) । मार्क्यूज कहते हें कि जनमाध्यम दुनिया के बारे में हम किस तरह सोचें इसकी शर्तें तय करता है । उनका प्रभाव यही तक सीमित नहीं होता कि हम किन मुद्दों पर विचार करें बल्कि इस पर भी होता है कि हम किस तरह सोचें । इस तरह वे हमारे संपूर्ण बौद्धिक संसार को अनुकूलित करते हैं (वही, पृ. 44) । संस्कृति के उद्योग बनने का प्रभाव हमारे सामाजिक जीवन पर बहुत गहरा दिखाई देता है । आगे के भाग में जनसंचार के विरूपीकरण पर संक्षिप्त चर्चा करेंगे ।

14.7 संस्कृति का विरूपीकरण

जनसंचार में हमारे सांस्कृतिक जीवन को किस हद तक प्रभावित करने की क्षमता है इसका सैद्धांतिक ढांचा आपके सामने साफ हो गया होगा । अगर हम आज भारतीय समाज को देखें तो सांस्कृतिक विरूपीकरण की इस प्रक्रिया को आसानी से समझ सकते हैं । आमतौर पर इस विरूपीकरण की प्रक्रिया

को पश्चिम के विकृत प्रभाव के रूप में देखा जाता है जो इस पूरे सवाल को गलत और अधूरे नजरिए से देखना है । जनसंचार के साधनों के बढ़ते जाने का सबसे अधिक लाभ शासक वर्ग को होता है जो जल्द ही उन साधनों को अपने स्वामित्व में ले लेता है । उसे यह समझने में भी ज्यादा समय नहीं लगता कि इन साधनों के द्वारा जो उत्पादित होगा वह सांस्कृतिक उत्पाद है । इसलिए वह ऐसे उत्पादों को ही प्रोत्साहित करता है जो जनता पर सांस्कृतिक वर्चस्व बनाने में और बनाए रखने में मदद करे । जैसा कि हम ऊपर चर्चा कर चुके हैं वह इसके लिए उन सभी सांस्कृतिक उत्पादों को प्रोत्साहित करता है जो लोगों में क्षणिक आनंद प्रदान कर सकते हैं जो लोगों को ऐसी ऐंद्रिक उत्तेजना प्रदान करे कि वह अपनी बौद्धिक और आत्मिक क्षमताओं को सक्रिय करने की आवश्यकता महसूस न करे । यह काम यदि पश्चिमी सांस्कृतिक उत्पादों से हो या पूर्वी इससे उसे कोई फर्क नहीं पड़ता । खास बात यह है कि उसका मुख्य मकसद उत्पाद के उपभोग पर टिका होता है । जनसंचार के द्वारा ऐसे उत्पादों को जनता के सामूहिक विकास और प्रगति में बाधक होते हैं और वे उन लोकतांत्रिक और मानवीय मूल्यों पर आधारित सामाज को बनाने के पयत्न पर यकीन छोड़ बैठते हैं जिन पर जनता का बढ़ता यकीन स्वयं शासक वर्ग के लिए खतरनाक साबित हो सकता है । आमतौर पर देखा यही गया है कि जब फिल्मों में नग्नता का विरोध किया जाता है तो उसके बदले में जिस चीज की मांग की जाती है वह है औरतों को घर में और पुरुषों के वर्चस्व में रखना । इस प्राकर स्त्री दोनों ही स्थितियों में अपनी स्वतंत्रता से वंचित रह जाती है । इसी प्रकार जनसंचार पर क्या दिखाया जाए और क्या नहीं इसको नियमित और नियंत्रित कर राजसत्ता आमतौर लोगों के अभिव्यक्ति के अधिकार को छीन लेती है । इसलिए जनसंचार के द्वारा संस्कृति विरूपीकरण के सवाल को व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखना चाहिए ।

जनसंचार के द्वारा सांस्कृतिक विरूपीकरण का सबसे खतरनाक पहलू यह है कि वह भौतिक वस्तुओं की तरह सांस्कृतिक उत्पाद को भी आनंद के लिए भोग की वस्तु बना देता है । इस कारण व्यक्ति की स्वयं की बौद्धिक और रचनात्मक ऊर्जा का ह्रास होने लगता है । इसका यह अर्थ यह नहीं है कि जनसंचार माध्यमों से किसी तरह की स्वस्थ और मानवीय संस्कृति की संभावनाएं खत्म हो गई है । इसके विपरीत इन माध्यमों में हर स्तर पर स्वस्थ और अस्वस्थ और मानवीय और उपभोक्तावादी सांस्कृतिक मूल्यों के बीच संघर्ष चलता रहता है । यह संघर्ष एक ही उत्पाद में भी देखा जा सकता है ।

14.8 सारांश

'जनसंचार और संस्कृति नामक इस इकाई में आप अब तक निम्नलिखित बातों का अध्ययन कर चुके हैं | आप जान चुके हैं कि संस्कृति से क्या तात्पर्य है | संस्कृति का सबंध मानव जीवन की सभी गतिविधियों से होता है | मानव सभ्यता के विकास के साथ संस्कृति का विकास होता है | सामाजिक जीवन में होने वाले परिवर्तनों का प्रभाव संस्कृति पर भी पड़ता है | प्रत्येक जातीय समूह की अपनी सांस्कृतिक परंपरा होती है और सभी जातीय समूह की सांस्कृतिक परंपराओं के समुच्चय से मानव संस्कृति का निर्माण होता है | संस्कृति की अवधारणा को समझने की चार पद्धतियां मानी जा सकती हैं : 1. संस्कृति ही क्लासिकल अवधारणा; 2. संस्कृति की वर्णनात्मक अवधारणा; 3. संस्कृति की प्रतीकात्मक अवधारणा; और 4. संस्कृति की सरंचनात्मक अवधारणा |

संस्कृति के प्रसार और प्रचार में जनसंचार की केंद्रीय भूमिका होती है | जनसंचार जिन प्रतीकात्मक रुपों का उत्पाद करता है वे वस्तुत: सांस्कृतिक उत्पाद हैं | इन उत्पादों के संप्रेषप के तीन पहलुओं का उल्लेख किया जा सकता है: 1. संप्रेषण का तकनीकी माध्यम; 2. संप्रेषप के संस्थागत साधन; और 3. संप्रेषण में शामिल देश-काल अतंराल | जनसंचार और संस्कृति से जुड़े कई सवाल उभरते हैं जिनमें संस्कृति के वर्चस्य का सवाल भी प्रमुख है | इकाई में इस मुद्दे पर भी गहराई से विचार किया गया है |

जनसंचार की परंपरा का संबंध मानव विकास से संबंध रखती है भाषा का विकास जनसंचार का प्रथम महत्वपूर्ण माध्यम है भारतीय इतिहास में भाषाओं का विकसित रुप हमें हड़प्पा सभ्यता से मिलता है | इसके अलावा कई ऐसे रुप भी मिलते हैं जिनका जनसंचार के विभिन्न रुपों में इस्तेमाल होता था | लेकिन जनसंचार के आघुनिक माध्यमों का विकास भारत में औपनिवेशिक काल में आरंभ हुआ | आज भारत में वे सभी साधन उपलब्ध हैं जो किसी भी विकसित देश में प्रयुक्त होते हैं | लेकिन इन साधनों का उपयोग सिर्फ वे ही लोग कर पाते हैं जिनके पास उनके इस्तेमाल के लिए आर्थिक क्षमता उपलब्ध है |

जनसंचार के साथ जन संस्कृति का भी विकास हुआ है | जन संस्कृति का अर्थ सामान्य जन की संस्कृति से लिया जाता है जिसे अभिजात संस्कृति की तुलना में निम्नस्तर की माना जाता है | जन संस्कृति को जनसंचार के लिए जनोत्पाद का परिणाम माना जाता है | जन संस्कृति को लोकप्रिय संस्कृति के रुप में भी पेश किया जात है । जो आम जनता में लोकप्रिय हो वह जन संस्कृति मानी जाती है आप इस इकाई में जन संस्कृति और जनसंचार के अतःसंबंधों को समझ चुके हैं |

जन संस्कृति के विस्तार के साथ संस्कृति ने एक उद्योग का रुप धारण कर लिया है | सांस्कृतिक उत्पादों को एक उद्योग का रुप देना पूंजीवादी व्यवस्था की परिघटना है जिसका मकसद इसके द्वारा पूंजी का संचयन और मुनाफा कमाना है| संस्कृति को उद्योग का रूप देने के लिए सांस्कृतिक वैविध्य को नष्ट कर उसे एक आयामी बनाया जाता है | संस्कृति के उद्योग ने सांस्कृतिक विरुपीकरण की प्रक्रिया को भी बढ़ावा दिया है | यह लोगों में रचनात्मक और बौद्धिक ऊर्जा का विकास करने की बजाए उसे सतही मनोरजंन के क्षणिक आनंद का उपभोक्ता बना देता है जनसंचार के इस नकारात्मक पहलू के बावजूद उसमें उससे संघर्ष करने की संभावना का अंत नहीं होता ।

14.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

रेमंड विलियम्स, संचार माध्यमों का वर्ग चरित्र; ग्रंथ शिल्पी, विजय चौक, लक्ष्मी नगर, दिल्ली-110092

जवरीमल्ल पारख, जनसंचार माध्यमों का वैचारिक परिप्रेक्ष्य; ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली- 110092

सुभाष धूलिया, सूचना क्रांति की राजनीति और विचारधारा, ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली- 110092

जवरीमल्ल पारख, जनसंचार के सामाजिक संदर्भ; अनामिका पब्लिशर्स, दिल्ली-110052

पूरन चंद्र जोशी, संस्कृति विकास और संचार क्रांति; ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली-110092

जॉन बी.थाम्पसन, आइडियोलॉजी एंड मॉडर्न कल्चर; पोलिटी प्रेस, केंब्रिज यू.के.

रोजामंड बिलिंगटन एवं अन्य (संपादित), कल्चर एंड सोसाइटी; मेकमिलन, लंदन.

समकालीन सृजन, आज का मीडिया, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

14.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. संस्कृति के अर्थ और स्वरूप की व्याख्या कीजिए ।
2. जनसंचार और संस्कृति के अंत:संबंधों की समीक्षात्मक विवेचना कीजिए ।
3. भारत में जनसंचार के विकास का उल्लेख कीजिए ।
4. जनसंचार के द्वारा सांस्कृतिक उत्पादों के उद्योग के रूप में विकसित होने की सामाजिक परिणतियों पर अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत कीजिए ।
5. आपके द्वारा देखी हुई किसी लोकप्रिय फिल्म को आधार बनाकर सांस्कृतिक विरूपीकरण पर अपना मत प्रकट कीजिए ।
6. एक नागरिक के तौर पर आप जनसंचार की किस भूमिका को भारतीय राष्ट्र के सांस्कृतिक विकास के लिए उपयुक्त समझते हैं? इस संबंध में अपना मत रखते हुए हाल ही में सांस्कृतिक क्षेत्र में उठे हुए मुद्दे पर भी अपना मत रखिए ।

इकाई 15 भारत की जनसंचार नीति

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य
15.1 प्रस्तावना
15.2 नीतिगत प्रावधानों की जरूरत
15.3 सूचना और अभिव्यक्ति का अधिकार
15.4 सूचनाओं को नियमित करने का प्रभाव
15.5 जनसंचार के वैधानिक प्रावधान
15.6 जनसंचार संबंधी नीतियां
15.7 जनसंचार संबंधी आचार संहिताएं
15.8 जनसंचार से संबंधित नीतियों का वैश्विक संदर्भ
15.9 सारांश
15.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें
15.11 निबंधात्मक प्रश्न

15.0 उद्देश्य

'जनसंचार के सिद्धांत-4' की यह पद्रहवीं इकाई है । इस इकाई में आप 'भारत की संचार नीति' के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे । इकाई को पढ़ने के बाद :

- संचार के विकास के साथ नीतिगत प्रावधानों की जरूरत क्यों होती है, इसके बारे में विचार कर सकेंगे |
- सूचना और अभिव्यक्ति के अधिकार का अर्थ और महत्व क्या है, इसका विवेचन कर सकेंगे।
- सूचनाओं और संदेशों को नियमित और नियंत्रित करने के प्रभावों का उल्लेख कर सकेंगे ।
- जनसंचार संबंधी नीतियों और आचार संहिताओं की जानकारी दे सकेंगे ।

15.1 प्रस्तावना

जनसंचार माध्यमों के विकास के साथ-साथ जनसंचार की नीतियों का भी आविर्भाव होना जरूरी हो गया था । जनसंचार का संबंध जनता के बीच संचार से है । संचार माध्यमों के द्वारा लोगों तक सूचनाओं और संदेशों का संप्रेषण होता है। लोग इन माध्यमों का उपयोग परस्पर संचार और संप्रेषण के लिए भी करते हैं । ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक हो जाता है कि इनके लिए कुछ नियम-कायदे बनाए जाएं । इस बात को हम एक उदाहरण से समझा सकते हैं । जब यातायात के साधन विकसित हुए और सड़कों पर तेज वाहन चलने लगे तो यह जरूरी हो गया कि लोगों को सड़क पर वाहन चलाने के कुछ नियमों से बांधा जाए ताकि सभी लोग जो सड़क का उपयोग कर रहे हैं वे बिना किसी परेशानी से ऐसा कर सकें। ऐसा न हो कि सड़कों पर ऐसी अराजकता पैदा हो जाए कि किसी के लिए भी वाहन चलाना मुश्किल हो जाए । सड़क की बाइं तरफ चलना, निर्धारित लेन में ही अपना वाहन चलाना, निर्धारित गति के अंदर ही वाहन चलाना । चौराहे पर सिग्नल काम नहीं करते और वहां कोई ट्रैफिक

पुलिस वाला भी नहीं होता तो कैसी अराजकता हो जाती है । दिल्ली जैसे शहरों में तो ऐसा जाम लग जाता है कि लोगों को लंबा समय उस जाम में से निकलने में लग जाता है । यही बात जनसंचार के संबंध में भी समझनी चाहिए ।

जनसंचार संबंधी नीतियों के अभाव में जनसंचार के क्षेत्र में ऐसी अराजकता कायम हो सकती है कि उसका प्रभाव समाज और राष्ट्र पर नकारात्मक ही पड़ेगा । उदाहरण के लिए प्रेस को लें । अखबार के द्वारा लोगों तक विभिन्न तरह की सूचनाएं और संदेश पहुंचाए जाते हैं । राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक कई तरह की खबरों को समाचारपत्रों में जगह दी जाती है । अखबारों का काम है कि वह लोगों को दुनिया, देश और समाज के बारे में खबर दें। लेकिन क्या अखबारों को यह छूट दी जानी चाहिए कि वह किसी भी तरह की खबरें छाप सकते हैं? क्या ऐसी बातें छापने का अधिकार दिया जाना चाहिए जिससे कि विभिन्न समुदायों के बीच वैमनस्य में बढ़ोतरी हो और जिसके कारण समाज की शांति और लोगों के बीच सदभावना खत्म हो । लेकिन क्या अखबारों में कोई बात बिना सरकार की पूर्वानुमति के नहीं छपने दी जानी चाहिए ? आप जानते हैं कि लोगों को सच्चाई जानने का पूरा हक है । अगर सरकार को यह छूट दे दी जाती है कि लोग अनुमति के बिना कुछ नहीं लिख सकते हैं तो वे बातें भी सामने नहीं आएंगी जो सरकार के गलत कार्यों पर अंकुश लगा सकती हैं । इसलिए यह मामला इतना सरल नहीं है । वे सरकारें जो जनता के लोकतांत्रिक अधिकारों को कुचलना चाहती हैं, सबसे पहले लोगों के जाने और कहने के अधिकारों पर ही हमला बोलती है । यदि एक तरफ अभिव्यक्ति और जानने के अधिकारों का सवाल है तो दूसरी तरफ समाज में शांति, सदभावना और सभी के लिए समान अवसरों का सवाल भी है । इन्हीं बातों के संदर्भ में ही संचार नीति का प्रश्न उठ खड़ा होता है ।

संचार नीतियों का बनना ही पर्याप्त नहीं होता, उनके गलत उपयोग को रोकने का सवाल भी है । इसके लिए भी जरूरी कदम उठाने की जरूरत होती है । इसलिए संचार नीति का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि लोगों को इस संदर्भ में कानूनी संरक्षण भी प्राप्त हो । इन्हीं सब मसलों पर हमने इस इकाई पर विचार किया है । यह इकाई भारत में जनसंचार नीति के बारे में है । इसलिए हमने मुख्यत: इसी पर विचार विमर्श किया है । लेकिन जहां आवश्यक हुआ है वहां हमने अन्य देशों और समूहों की संचार नीतियों का भी हवाला दिया है । आशा है कि आप इस इकाई के माध्यम से जनसंचार की नीतियों को अच्छी तरह समझ सकेंगे ।

15.2 नीतिगत प्रावधानों की जरूरत

प्रस्तावना में हमने इस बात की चर्चा की है कि जनसंचार के लिए नीतियां बनाने की जरूरत क्यों होती हैं । यहां हम इसके विभिन्न पहलुओं पर विचार करेंगे । उन देशों में जहां प्रेस की स्थापना हुई और समाचारपत्र प्रकाशित होने लगे, तो उसके साथ ही उन्हें नियंत्रित और नियमित करने की जरूरत भी शासक वर्ग को महसूस होने लगी । आमतौर पर यह कहा जाता है कि पूंजीवादी देशों में प्रेस सहित जनसंचार के सभी माध्यमों को स्वतंत्रता प्राप्त है । लेकिन यह स्वतंत्रता उन्हें आरंभ से ही प्राप्त नहीं थी और न ही एक दिन अचानक मिल गई थी बल्कि वहां की जनता को इसके लिए लगातार लंबा संघर्ष करना पड़ा था । ब्रिटेन में प्रेस को आरंभ में स्वतंत्रता प्राप्त नहीं थी । पहली बार 1695 में प्रेस लाइसेंस कानूनों में संशोधन किया गया और 1712 में उन्हें कम दबावकारी बनाया गया और प्रेस एक्ट में बदल दिया गया । 1770 के दशक में कानूनों में ढील देकर संसद की कार्रवाई की रिपोर्टिंग पर लगे

प्रतिबंधों में छूट दी गई। आमतौर पर माना जाता है कि विक्टोरिया युग में ही पहली बार प्रेस को वास्तविक स्वतंत्रता प्राप्त हुई जब 1843 में 'ज्ञान पर लगे कर' को हटा लिया गया । इस प्रकार लगभग डेढ़ सौ साल तक चले संघर्ष के बाद ही ब्रिटेन को वह आजादी मिली जिसे प्रेस की आजादी कहा जा सकता है (जेम्स कुरान का लेख, कैपिटलिज्म एंड कंट्रोल ऑफ दि प्रेस, 1800-1975; मास कम्युनिकेशन एंड सोसाइटी, संपादक जेम्स कुरान, माइकेल गुरुविच और जानेट वुलकॉट; ओपन यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, 1987; पृ.195) । यहां हम संचार नीतियों के निर्माण के विभिन्न कारणों को प्रस्तुत कर रहे हैं ।

संचार नीतियों का संबंध संचार के विकास से जुड़ा है । किसी नए संचार माध्यम के अस्तित्व में आते ही उससे संबंधित नीतियां नहीं बन जाती । उदाहरण के लिए जब इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का विस्तार होने लगा उससे जुड़ी समस्याएं सामने आने लगी तो यह सवाल भी सामने आया कि उनको नियमित करने के लिए नीतियों का निर्धारण करें । ये समस्याएं कई तरह की हो सकती हैं । उदाहरण के लिए, केबल टीवी के प्रसार के साथ यह समस्याएं आईं कि नई फिल्म जिसका अभी तक सार्वजनिक प्रदर्शन भी नहीं हुआ है, उसको केबल ऑपरेटरों ने वीडियो कैसेट या सीडी रॉम के द्वारा अपने चैनलों में दिखाना आरंभ कर दिया । इसका नतीजा यह हुआ कि उस फिल्म को देखने के लिए लोगों ने सिनेमाघर जाना जरूरी नहीं समझा । जाहिर है इसका आर्थिक खामियाजा निर्माताओं और वितरकों को भुगतना पड़ा । इसी प्रकार निर्माता की बिना अनुमति के बनाई गई कैसेट या सीडी के कारण भी उसको आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है, क्योंकि वे उससे होने वाली कमाई से वंचित रह जाते हैं । कुछ हद तक यह नुकसान सरकार को भी उठाना पड़ता है क्योंकि बिना अनुमति के बनाई गई कैसेट पर होने वाली कमाई पर बिक्री कर और आयकर भी नहीं दिया जाता । इसलिए यह जरूरी हो जाता है कि ऐसे कानून बनाये जाएं जिससे कि कोई भी व्यक्ति या संस्था जो किसी फिल्म का निर्माण, वितरण और प्रदर्शन करते हैं वे उन कानूनों की सीमा में रहकर ही ऐसा करें और जो इन कानूनों का उल्लंघन करते हैं उनके लिए दंड का प्रावधान भी किया जाता है ।

जनसंचार माध्यम में सिर्फ आर्थिक पक्ष ही नहीं जुड़ा होता । जनसंचार से संबंधित विभिन्न संस्थानों और गतिविधियों से बहुत तरह के लोग जुड़े होते हैं । यदि कुछ का उन पर स्वामित्व होता है तो ज्यादातर अपना श्रम और अपनी प्रतिभा बेचते हैं । कोई स्थायी कर्मचारी के तौर पर तो कोई अस्थायी तौर पर तो कोई अनुबंध के तहत । ऐसे लोगों के अधिकारों की रक्षा का सवाल भी संचार नीति से जुड़ा है । इसी प्रकार जनसंचार माध्यमों द्वारा उत्पादित होने वाले संदेशों के निर्माण और प्रसारण आदि में इस्तेमाल होने वाले यंत्रों, उपकरणों, कच्चे मालों आदि के आयात-निर्यात, खरीद-फरोख्त आदि से संबंधित कानूनों की भी जरूरत होती है ।

क्या लोगों को इस बात की निर्बाध अनुमति दी जानी चाहिए कि ऐसी फिल्में बनें जो समाज के बहुत से हिस्से के लिए हितकर न हो । मसलन, प्रत्येक फिल्म बच्चों के लिए उपयोगी नहीं होती क्योंकि उनका मस्तिष्क परिपक्व नहीं होता कि वे सभी तरह की संदशों को समझ सकें । इसी प्रकार कई बार ऐसी किताबें छप जाती हैं जो किसी समुदाय विशेष की भावनाओं को आघात पहुंचाने वाली हो, ऐसी बातें अखबार में छप सकती है जो किसी व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए घातक साबित हो । इसलिए यह जरूरी हो जाता है कि जनसंचार माध्यम से प्रसारित होने वाले संदेशों का नियंत्रण भी किया जाए ।

नियमन और नियंत्रण की जरूरत सभी तरह के समाजों को होती है लेकिन इससे लोगों की कहने और जानने के अधिकारों का हनन भी हो सकता है । मसलन, लोगों को यह जानने का अधिकार है कि जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कर वे सरकार को देते हैं वे उसका कहीं दुरुपयोग तो नहीं कर रहे हैं । लोगों को यह भी जानने का अधिकार है कि सरकारें कोई ऐसा कानून तो बनाने नहीं जा रही है जिससे लोगों की स्वतंत्रता और अधिकारों पर आघात होने की संभावना हो । इसलिए यह भी जरूरी है कि ऊपर की दोनों बातों को स्वीकार करते हुए भी सरकारें उनका दुरुपयोग न करें । मसलन, शेखर कपूर की फिल्म 'बेडिट क्वीन' को सेंसर बोर्ड ने प्रदर्शन की अनुमति देने से इन्कार कर दिया । सेंसर बोर्ड का प्रमाण पत्र हासिल करने के बाद ही भारत में कोई फिल्म सार्वजनिक रूप से प्रदर्शित की जा सकती है । सेंसर बोर्ड का तर्क था कि यह फिल्म अश्लील है और समाज के कुछ हिस्सों की भावनाओं के विरुद्ध है । अब ऐसी स्थिति में क्या किया जाना चाहिए? इसका कानूनी प्रावधान यह था कि यदि सेंसर बोर्ड किसी फिल्म पर प्रतिबंध लगाता है तो फिल्म निर्माता उसके खिलाफ कोर्ट में अपील दायर कर सकता है । इस फिल्म के निर्माता ने यही किया और सुप्रीम कोर्ट ने सेंसर बोर्ड के फैसले को खारिज करते हुए फिल्म के सार्वजनिक प्रदर्शन की अनुमति दे दी ।

संचार नीति की जरूरत के संदर्भ में यह भी महत्वपूर्ण है कि इन नीतियों का अनुपालन इस तरह से हो कि लोगों का यह विश्वास बना रहे कि संचार नीतियां संविधान में मिले उनके अधिकारों का हनन करने का औजार नहीं बनेगी। इसके लिए कई तरह के कानून बनाए जाते हैं । इनके अनुपालन का अधिकार ऐसे लोगों और संस्थाओं को दिया जाता है जो सरकार से स्वायत होकर काम कर सकें और जिनके पास पर्याप्त अधिकार भी हों ।

ये कुछ ऐसे पहलू हैं जिससे के जनसंचार से संबंधित सब तरह की गतिविधियों के संबंध में नीतियों के निर्माण का औचित्य प्रतिपादित किया जा सकता है । इसका यह मतलब नहीं लेना चाहिए कि सभी तरह की नीतियों का निर्माण सरकार कानून के तौर पर ही बनाए । कई बार सरकार की पहलकदमी से किसी संगठन का निर्माण कर दिया जाता है, शेष काम वह संस्था ही करती है । मसलन, प्रेस कौंसिल की स्थापना प्रेस की गतिविधियों के नियमन के लिए है । उसने कुछ आचार संहिताएं बनाई हुई हैं । समाचारपत्रों, संपादकों और पत्रकारों से अपेक्षा की जाती है कि वे इन आचार संहिताओं का इस्तेमाल करें लेकिन ऐसा करना उनके लिए बाध्यकारी नहीं है । लेकिन फिल्म के प्रदर्शन के लिए सेंसर बोर्ड का प्रमाणपत्र पाना बाध्यकारी है और इसका उल्लंघन नहीं किया जा सकता । लेकिन दोनों ही तरह की स्थितियों में अंतिम निर्णय का अधिकार न्यायालयों को होता है जहां अपील कर कोई भी अपने लिए न्याय मांग सकता है । यह न्याय संविधान की व्यवस्थाओं के अनुसार मिलता है जिसमें नागरिकों को तरह-तरह के अधिकारों और स्वतंत्रताओं की व्यवस्था होती है । कई बार नई तरह की चुनौतियां भी सामने आती हैं । मसलन, अभी हाल में एक इंटरनेट डॉट काम कंपनी ने रक्षा सौदों में व्याप्त भ्रष्टाचार के ऐसे पक्के सबूत पेश किए कि सरकार को काफी शर्मिंदगी का सामना करना पड़ा । इसने एक नई तरह की बहस को जन्म दिया और अब यह कहा जाने लगा है कि प्रेस कौंसिल' की तरह मीडिया कौंसिल बनाने की जरूरत है ।

आगे हम उन नागरिक अधिकारों पर विचार करेंगे जिनका संबंध सूचना और अभिव्यक्ति के अधिकार से है ।

15.3 सूचना और अभिव्यक्ति का अधिकार

जनसंचार की स्वतंत्रता का संबंध वस्तुत: अन्य स्वतंत्रताओं से बहुत गहरा है । जब अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की बात की जाती है तो उसका तात्पर्य होता है सूचना प्राप्त करने का अधिकार और अपनी बात कहने का अधिकार । इन दोनों अधिकारों का संबंध सिर्फ प्रेस या अन्य जनमाध्यमों की स्वतंत्रताओं से ही नहीं है । यह समाज में व्यक्ति की मूलभूत स्वतंत्रताओं से जुड़ा हुआ है । लोकतांत्रिक समाजों के संविधानों में बहुत तरह की स्वतंत्रताओं की गारंटी दी जाती है । सूचनाओं को जानने का अधिकार, अपनी बात कहने का अधिकार, दूसरों की बात की आलोचना करने का अधिकार, अन्य लोगों के साथ मिलकर अपनी बात के पक्ष में आंदोलन करना आदि । लेकिन ये अधिकार किसी भी समाज में कुछ खास तरह के नियमों से बंधे होते हैं । मसलन, सूचनाओं का अधिकार लगभग सभी लोकतांत्रिक समाजों में जानने के मौलिक अधिकार के रूप में वर्णित होता है । लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि लोगों को देश की सुरक्षा संबंधी सूचनाएं जानने का अधिकार भी मिल जाता है । सरकारें देश की सुरक्षा के नाम पर अपने नागरिकों से बहुत-सी सूचनाओं को छिपाती है । यही नहीं आम तौर पर देखा यह गया है कि देश की सुरक्षा के नाम पर ऐसी सूचनाओं को भी छिपाया जाता है जिनका वास्तव में सुरक्षा से कोई संबंध नहीं नेता । लेकिन वर्गीकृत सूचनाओं की श्रेणी में डालकर बहुत-सी बातें जो शासक वर्ग के हितों के अनुकूल नहीं होती जनता से छिपा लिया जाता है ।

इसका अर्थ यह भी है कि लोकतांत्रिक देश आमतौर पर वैधानिक प्रावधानों के द्वारा एक जगह जानने और अभिव्यक्ति का अधिकार देकर दूसरी बहुत जगह इन अधिकारों पर रोक भी लगाती है और इस संबंध में समय-समय पर नए कानून भी बनाये जाते हैं । ये नियम देश की सुरक्षा, राज्य को यह प्रतीत हो कि किसी सूचना के द्वारा राज्य और राष्ट्र की सुरक्षा को खतरा हो सकता है, या जब कोई व्यक्ति किसी धर्म या संप्रदाय की या उससे संबंधित किसी देवता, पैगंबर, पुस्तक या अन्य प्रतीक की निंदा करता है या करना चाहता है और उससे विभिन्न समुदायों में तनाव या झगड़ा होने की संभावना बन जाती है तो ऐसी सूचना को भी राज्य कानूनी प्रावधानों द्वारा रोकने का प्रयास करता है जिसकी व्यवस्था संविधान में की गई होती है । इसी प्रकार किसी भी व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति का अपमान करने, उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा को ठेस पहुंचाने की स्वतंत्रता भी नही मिली होती । उसे किसी दूसरे व्यक्ति या समुदाय की निंदा करने या उसकी भावनाओं को आहत करने का अधिकार नहीं होता । यदि किसी के द्वारा कही गई बात से या लिखी गई बात से ऐसा होता है तो राज्य को कानून ये अधिकार देता है कि वह उस व्यक्ति को इस तरह की बात कहने से रोके, यदि ऐसा कहा या लिखा जा चुका है तो वह ऐसी सामग्री के प्रकाशन और वितरण पर रोक लगा सकती है और इस तरह का कृत्य करने वाले व्यक्ति को ऐसा करने के अपराध में सजा भी दी जा सकती है ।

इन बातों से जाहिर है कि जानने और कहने का अधिकार अपने में पूर्ण और निरपेक्ष अधिकार नहीं है । ये अधिकार कई तरह के वैधानिक प्रावधानों से नियंत्रित और नियमित होकर ही लागू किये जाते हैं । लेकिन सवाल यहां यह है कि क्या जानने और कहने का अधिकार किसी भी समाज में पूर्ण और निरपेक्ष रूप में नागरिकों को प्राप्त हो सकते हैं? ऐसी स्थिति में यह कैसे तय हो कि जानने और कहने के अधिकार का उपयोग जनता के हित में ही किया जा रहा है, राजसत्ता और उस पर आसीन

राजनीतिक गुट, पार्टी और वर्ग अपने हित में नहीं कर रहा है? राजसत्ता को जनता के जानने और कहने के अधिकार को नियंत्रित और नियमित करने का अधिकार किस सीमा तक होना चाहिए?

लोकतांत्रिक समाजों में जानने का अधिकार एक महत्वपूर्ण नागरिक अधिकार है । इस अधिकार की नींव इस बात पर टिकी है कि जिस सरकार को जनता चुनती है, वह किस तरह काम कर रही है यह जानने का अधिकार भी उस जनता को है । सरकार चलाने में पारदर्शिता की मांग इस लोकतांत्रिक समझ से ही आती है । लेकिन सरकार का दायित्व यह भी होता है कि वह सरकार को इस रूप में चलाए जिससे राष्ट्र और नागरिकों के हितों को नुकसान न हो । मसलन, बजट प्रावधानों को आमतौर पर गुप्त रखा जाता है जब तक कि उन्हें संसद की पटल पर रख नहीं दिया जाता और संसद के पटल पर रखे जाने के साथ ही उन्हें लागू मान लिया जाता है । बजट के वे प्रावधान जिसमें नए करों या करों में छूट की व्यवस्था की गई है उन्हें यदि लागू किये जाने से पहले ही मालूम कर लिया जाता है, तो जिन्हें इन प्रावधानों से लाभ या हानि हो सकती है, वे ऐसे कदम उठा सकते हैं जिससे उन्हें ज्यादा लाभ हो या कम हानि हो । ऐसी स्थिति में यह जरूरी हो जाता है कि बजट प्रावधानों को गुप्त रखा जाए । देश की सुरक्षा संबंधी सूचनाएं भी इस तरह की हो सकती हैं कि उसका सार्वजनिक होना देश की सुरक्षा के लिए खतरनाक साबित हो । ये वास्तविक चिंताएं हैं और लोकतांत्रिक सरकारों का यह दायित्व है कि वे ऐसे कदम उठाए कि ऐसी सूचनाएं तब तक सार्वजनिक न हों, जब तक कि उनका सार्वजनिक होना जनता और देश के हित में न हो या जिनके सार्वजनिक होने से देश और जनता का अहित न हो ।

लोकतांत्रिक समाजों में सूचना और अभिव्यक्ति संबंधी अधिकारों को नियमित करने के लिए कानूनी प्रावधान किस तरह के हैं यह इस बात पर निर्भर करते हैं कि वहां शेष स्वतंत्रताएं किस तरह की हैं । मसलन, जिन समाजों में व्यक्ति की स्वतंत्रता और अधिकारों को समाज की स्वतंत्रता और अधिकारों से ऊपर तरजीह दी जाती है, वहां इन अधिकारों का स्वरूप भी उसी के अनुरूप होगा । लेकिन जिन समाजों में व्यक्ति के अधिकारों और स्वतंत्रताओं से ऊपर सामाजिक स्वतंत्रताओं और अधिकारों को महत्व दिया जाता है वहां इनका स्वरूप भिन्न होगा । व्यक्ति की स्वतंत्रताओं को अधिक महत्व देने वाले समाजों में यह माना जाता है कि व्यक्ति के क्रियाकलापों में राज्य को कम-से-कम हस्तक्षेप करना चाहिए। आमतौर पर इसका व्यवहार में मतलब होता है कि लोगों को अपनी उन सब गतिविधियों को चलाने की स्वतंत्रता होनी चाहिए जो उनके व्यक्तित्व के विकास में मददगार हो । यहां इसका व्यवहार में मतलब होता है कि समाज की सामान्य हितों की परवाह किये बिना लोगों को अपने हितों के अनुसार काम करने की स्वतंत्रता प्रदान करना ।

अगर हम सूचना के अधिकार की बात पर ही विचार करें तो हमारे सामने ऐसे ही बुनियादी सवाल पैदा होते हैं । सूचना का अधिकार सभी को संविधान में दिया गया है और हम थोड़ी देर के लिए इस बात को छोड भी दें कि व्यवहार में इसको नियंत्रित करने के लिए कितनी तरह के नियम और कानून बनाये गये हैं तो भी यह सवाल जरूर उठता है कि क्या सभी तरह की सूचनाओं का निर्बाध प्रवाह है और क्या सभी के पास वे साधन मौजूद हैं जिनसे वे सूचनाओं को प्राप्त कर सकें? इसके साथ ही सूचनाओं का निर्माण, पुनर्निर्माण और संप्रेषण का काम जिनके हाथ में हैं वे इन्हें सभी को समान रूप से और न्यायोचित ढंग से संप्रेषित करते हैं? आमतौर पर सरकारें इस बात का दायित्व नहीं लेतीं कि सूचनाओं का प्रवाह सभी नागरिकों के बीच समान रूप से हो । सूचनाएं प्राप्त करने के

जो साधन हैं । मसलन, समाचारपत्र, रेडियो, टेलीविजन आदि उनकी उपलब्धता असमान है । समाचारपत्र से सूचनाएं प्राप्त करना उन लोगों के लिए असंभव है जो निरक्षर हैं। लेकिन भारत जैसे देश में निरक्षर आमतौर पर वे ही लोग हैं जो गरीब हैं । गरीब होने की वजह से वे रेडियो या टेलीविजन जैसे माध्यमों तक भी पहुंच नहीं रखते जिनके लिए साक्षर होना जरूरी नहीं है । रेडियो और टेलीविजन खरीदने के लिए गरीब को अतिरिक्त आमदनी की जरूरत होती है, लेकिन उसके लिए वह जुटाना मुश्किल होता है । कहने का तात्पर्य यह है कि संविधान में सूचनाओं के अबाध प्रवाह का प्रावधान होते हुए भी आबादी का बड़ा हिस्सा उससे वंचित ही रह जाता है ।

15.4 सूचनाओं को नियमित करने का प्रभाव

यह कहा जा चुका है कि सरकारें समय-समय पर बहुत सी सूचनाओं को जनता से छुपाती है । लेकिन वह उन सूचनाओं को भी लोगों तक पहुंचाने से रोकती है जिनका स्रोत वह स्वयं नहीं होती । मसलन किसी पुस्तक के प्रसार पर या फिल्म के प्रदर्शन पर रोक लगाना । दुनिया में ऐसी कई फिल्में और पुस्तकें हैं जिनके प्रसारण और प्रदर्शन पर विभिन्न देशों की सरकारों ने रोक लगा रखी है । तसलीमा नसरीन का उपन्यास 'लज्जा' बंगलादेश में प्रतिबंधित है लेकिन भारत में नहीं । यह तथ्य यह भी बताता है कि जो किताब एक जगह प्रतिबंधित हो जरूरी नहीं कि वह किताब दूसरी जगह भी प्रतिबंधित हो । इसका यह मतलब भी है कि किताब पर प्रतिबंध के न तो कोई सामान्य नियम हैं और न ही उन्हें लागू करने की कोई सामान्य नीति । यह बहुत कुछ सरकारों के मनमानेपन पर निर्भर करता है या उस राजनीति-सामाजिक माहौल पर जो किसी किताब या फिल्म या चित्र को लेकर राजसत्ता पर दबाव बनाता है ।

हम कह चुके हैं कि विभिन्न देशों में फिल्मों के लिए सेंसर या प्रमाणन की व्यवस्था है । सभी फिल्मों को प्रदर्शन के लिए अपनी फिल्मों को सेंसर या प्रमाणन बोर्ड के पास भेजना पड़ता है । ये बोर्ड तय किये गये नीति निर्देशक सिद्धांतों के अनुसार फिल्मों का मूल्यांकन करता है और प्रदर्शन करने का प्रमाणपत्र जारी करता है । बिना इस तरह के प्रमाणपत्र के कोई फिल्म सार्वजनिक रूप से नहीं दिखाई जा सकती है । क्या फिल्म पूरी तरह से प्रदर्शन के योग्य है या उसमें कुछ दृश्यों को हटाने की जरूरत है? यदि फिल्म को प्रदर्शन की अनुमति दी जाती है तो बोर्ड को यह भी तय करना होता है कि किस वर्ग के दर्शक उस फिल्म को देख सकते हैं । मसलन, क्या इसे सभी वर्ग के दर्शक देख सकते हैं या सिर्फ वयस्क या ऐसे वर्ग में फिल्म को रखा जा सकता है जिसमें बच्चों को अकेले फिल्म देखने की अनुमति नहीं दी जाती लेकिन वे अपने माता-पिता या किसी अन्य वयस्क के साथ देख सकते हैं । फिल्म प्रमाणन के लिए सुप्रीम कोर्ट ने 1989 में कुछ निर्देश जारी किए थे । इन निर्देशों में कहा गया कि फिल्म माध्यम सामाजिक स्तर और मूल्यों के प्रति उत्तरदायी बना रहें, कलात्मक अभिव्यक्ति और सृजनात्मक स्वतंत्रता अनावश्यक रूप से दमित न हो । प्रमाणन सामाजिक परिवर्तन के अनुरूप हो । फिल्में स्वच्छ और स्वस्थ मनोरंजन करें और फिल्मों में यथासंभव सौंदर्यबोध और सिनेमाई मानदंडों के अनुरूप हो । इसके साथ ही बहुत-सी नकारात्मक बातों को फिल्मों में प्रस्तुत किये जाने से रोकने के निर्देश दिये, जिनकी चर्चा हम आगे करेंगे ।

समाचारपत्रों और किताबों के प्रकाशन पर पहले से सेंसर की व्यवस्था ज्यादातर लोकतांत्रिक देशों में नहीं है । आजाद भारत में आपातकाल की अवधि को छोड़कर किसी भी समय अखबारों पर सेंसर की व्यवस्था लागू नहीं रही । लेकिन औपनिवेशिक दौर में पत्र-पत्रिकाओं को सेंसर और अन्य

तरह के प्रतिबंधों का सामना करना पड़ता था । यह सिलसिला राजा राममोहन राय के जमाने से चल रहा था । इसी प्रकार जब भारत में बीसवीं सदी के दूसरे दशक में फिल्मों का निर्माण शुरू हुआ तो अंग्रेज सरकार द्वारा फिल्मों के सेंसर की व्यवस्था लागू की गई । पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों के प्रकाशन पर सरकार की तरफ से पहले कोई नियंत्रण नहीं है लेकिन प्रकाशित होने के बाद यदि उसमें छपी सामग्री को लेकर विवाद उठता है तो सरकार के पास ऐसे अधिकार हैं कि वह उस किताब या पत्र-पत्रिका को या तो जब्त कर सकती है या उसके प्रकाशन और विक्रय पर रोक लगा सकती है । हां, यह जरूर है कि सरकार के ऐसे फैसले के खिलाफ पुस्तक या पत्र-पत्रिका का लेखक, प्रकाशक या संपादक कोर्ट में अपील कर सकता है और कोर्ट यदि उचित समझें तो सरकार के निर्णय को बदल सकती है ।

फिल्मों के सेंसर बोर्ड की नीतियां लिखित रूप में ज्यादा नहीं बदलतीं लेकिन उनको व्यावहारिक रूप में लागू करने में बदलाव को ज्यादा साफतौर पर देखा जा सकता है । मसलन, भारत में छठे दशक तक एक आम पुलिस वाले या राजनीतिज्ञ को भ्रष्ट नहीं दिखाया जाता था लेकिन अब किसी को भी चाहे वह कितना ही बड़ा अधिकारी, नेता, मंत्री या न्यायाधीश ही क्यों न हो उसको भ्रष्ट और अपराधी दिखाने पर किसी तरह की रोक नहीं हैं इसी तरह फिल्मों में अश्लील और नग्न दृश्यों को दिखाने में पहले की तुलना में ज्यादा उदारता बरती जा रही है या हिंसा के ऐसे क्रूरतम दृश्यों को देखा जा सकता है जो आज से दो दशक पहले तक बिल्कुल ही संभव नहीं थे । यहां यह जानना भी जरूरी है कि ये परिवर्तन समाज निरपेक्ष नहीं है बल्कि समाज में होने वाले परिवर्तनों से इनका गहरा संबंध है और इसका असर ही सेंसर बोर्ड के निर्णयों पर दिखाई देता है । कई बार ऐसी धारणाएं भी बन जाती हैं कि एक खास तरह के समाज में ऐसी ही चीजों को देखने और दिखाने की अनुमति दी जानी चाहिए जो वहां की परंपरा और संस्कृति के अनुरूप हो । मसलन, यह माना जाता रहा है कि भारतीय समाज में चुंबन को फिल्म के पर्दे पर देखना और दिखाना अच्छा नहीं समझा जाता। इसलिए फिल्म के पर्दे पर ऐसा कोई दृश्य नहीं दिखाया जाता था जिसमें होठों-से-होठों से चुंबन लिया जाता हो । सातवें दशक में सेंसर बोर्ड के बारे में खोसला समिति ने जो सिफारिशें की थीं उनमें चुंबन मीडिया में जबर्दस्त विवाद का विषय बना था । लेकिन अब जब लगभग एक दशक से भारतीय फिल्मों में चुंबन को दिखाने की अनुमति दी जाने लगी हैं । न तो ऐसा कह सकते हैं कि इसका विरोध हुआ है, इसने कोई उल्लेखनीय नकारात्मक असर डाला है और न ही भारतीय फिल्मों का स्वरूप इसके कारण बदला है । अब भी भारतीय लोकप्रिय सिनेमा ने अपना मेलोड्रामिक स्वरूप परिवर्तित नहीं किया है और इस स्वरूप में चुंबन जो प्रभाव पैदा करता है उससे कहीं ज्यादा गहरा और दीर्घकालीन असर गीत, संगीत और नृत्य से होता है जो भारतीय फिल्म की खास पहचान बन चुके हैं । यानी कि चुंबन को दिखाने की अनुमति के बावजूद व्यावसायिक फिल्मकार उसका वैसा उपयोग नहीं कर रहे हैं जैसा हम पश्चिम की फिल्मों में देखने के आदी हैं ।

15.5 जनसंचार के वैधानिक प्रावधान

जनसंचार से संबंधित नीतियों के बारे में अध्ययन करने से पहले यह जानना चाहिए कि ये नीतियां किन संवैधानिक प्रात्रधानों के अंतर्गत बनी हैं । जिस प्रकार अमरीकी संविधान में फर्स्ट एमेंडमेंट में अमरीकी नागरिकों को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रदान की गई है उसी प्रकार भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (क) में नागरिकों को वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रदान की गई है । संविधान के इसी अनुच्छेद में प्रेस सहित मीडिया की स्वतंत्रता भी शामिल है । संविधान के इस अनुच्छेद की

व्याख्या करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के निम्नलिखित मुख्य उद्देश्य गिनाए हैं-

1. व्यक्ति की आत्मोन्नति में सहायक होना,
2. सत्य की खोज में सहायक होना,
3. व्यक्ति के निर्णय लेने की क्षमता को सुदृढ़ करना, और
4. स्थिरता और सामाजिक परिवर्तन में युक्तियुक्त सामंजस्य स्थापित करने में सहायक होना।

इसी मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी साफ किया था कि समाचार पत्रों का पूर्व सेंसर, उसके परिचालन पर प्रतिबंध, आरंभ पर रोक और चालू रखने के लिए सरकारी सहायता की अनिवार्यता आदि असंवैधानिक हैं (पत्रकारिता एवं प्रेस विधि, पृ 14) । लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि सरकारों को प्रेस के मामले में किसी प्रकार के अधिकार नहीं है । प्रेस की जिस स्वतंत्रता की गारंटी संविधान में दी गई है, उसी संविधान में कई अन्य तरह की स्वतंत्रताओं और अधिकारों की बात भी की गई है । इन स्वतंत्रताओं और अधिकारों के कारण कई ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें प्रेस को अपनी स्वतंत्रता का उपयोग सोच-समझ कर करना होता है । संविधान के 19 (2) में ऐसे प्रावधानों का उल्लेख किया गया है-

1. राज्य की सुरक्षा ऐसा मामला है जिसके आधार पर प्रेस पर अंकुश लगाया जा सकता है, क्योंकि यह माना जाता है कि अगर राज्य के हितों के विरुद्ध काम करने वाले तत्वों को मीडिया महत्व देगा तो इससे राज्य की सुरक्षा खतरे में पड़ जाएगी । यदि राज्य ही खतरे में पड़ जाएगा तो जनता के अधिकार भी कैसे सुरक्षित रहेंगे?

2. विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध भी राष्ट्र-राज्य की सुरक्षा, हितों और विकास के लिए जरूरी है । यदि मीडिया ऐसी बातों को प्रकाशित करता है जिससे दूसरे देशों के साथ उसके संबंधों पर असर पड़ता है, या उनके संबंध तनावपूर्ण बनते हैं तो राज्य को यह अधिकार है कि वह प्रेस को नियंत्रित करे और ऐसी बातों को जनता के सामने आने से रोके।

3. शिष्टाचार एवं सदाचार भी ऐसा क्षेत्र है जिसको क्षति पहुंचाने की कोशिश करने पर मीडिया को नियंत्रित किया जा सकता है । इसी बात को आधर बनाकर राज्य ऐसी पुस्तकों और फिल्मों को प्रतिबंधित करता है जिन्हें अश्लील या राष्ट्रीय संस्कृति के विरुद्ध माना जाता है ।

4. लोक व्यवस्था यानी समाज में कानून व्यवस्था बनाए रखने के लिए राज्य को अधिकार दिया गया है कि वह मीडिया पर प्रतिबंधित लगा सकती है ।

5. न्यायालय की अवमानना करने वाली किसी भी खबर, या किसी भी प्रकार के साहित्य को भी मीडिया पर अंकुश के लिए इस्तेमाल किया जाता है ।

6. यदि किसी समाचार, लेख साहित्य, फिल्म या मीडिया द्वारा प्रसारित किसी भी तरह के संदेश से किसी व्यक्ति या व्यक्तियों या समुदायों की मानहानि होती है तो उन पर प्रतिबंध लगाया जा सकता है ।

7. अपराध या हिंसा भड़काने वाले किसी भी समाचार या संदेश को राज्य रोक सकता है ।

8. भारत की संप्रभुता और अखंडता बनाए रखना सभी नागरिकों का कर्तव्य माना जाता है । यदि कोई व्यक्ति या मीडिया ऐसा कोई काम करता है जिससे भारत की संप्रभुता और अखंडता पर आंच आती हो तो उनके विरुद्ध कार्रवाई की जा सकती है ।

उपर्युक्त दिशा-निर्देशों की रोशनी में ही मीडिया की नीतियों और आचार संहिताओं को देखा जाना चाहिए । ये सभी मामले ऐसे हैं जिनमें राज्य को व्यक्ति और मीडिया की स्वतंत्रता पर अंकुश लगाने का अधिकार मिल जाता है । लेकिन ऐसे सभी मामलों में लोगों को न्यायालय के सामने अपील करने का अधिकार भी संविधान में दिया गया है । वे इस तरह के प्रतिबंधों को हटाने के लिए कोर्ट में अपील कर सकता है । इसी प्रकार किसी समाचार, लेख, साहित्य फिल्म आदि विभिन्न माध्यमों से प्रसारित संदेश के खिलाफ भी अदालत में अपील की जा सकती है । यह अपील मानहानि या न्यायालय की अवमानना के संबंध में ही नहीं बाल्कि ऊपर गिनाये गए दूसरों मामलों में भी की जा सकती है । संविधान की इन व्यवस्थाओं के दुरुपयोग के मामले भी बराबर सामने आते रहते हैं । यह दुरुपयोग सरकारों द्वारा भी होता है और लोगों द्वारा भी । इसलिए यह जरूरी हो जाता है कि ऐसी आचार संहिताएं और नीतियां बनाई जाएं जिससे कि व्यक्ति और मीडिया को संविधान में मिली स्वतंत्रताओं और अधिकारों की रक्षा होते हुए भी ऊपर बताए हुए कारणों के संदर्भ में सावधानी भी बरती जा सके । इनमें से कुछ कानूनी प्रावधानों द्वारा संरक्षित होती है तो कुछ इस क्षेत्र में सक्रिय संस्थानों द्वारा बनाई जाती है लेकिन कानून की तरह बाध्यकारी नहीं होती है ।

उदाहरण के लिए प्रेस को संसद की कार्रवाई को प्रकाशित करने का अधिकार है । लेकिन यह अधिकार संसद के पास है कि वह ऐसी गोपनीय कार्रवाइयों को प्रकाशित करने से रोक लगा सकती है जिसका प्रकाशित होना जनहित या राष्ट्रहित में नही माना जाता । इसी प्रकार संसद के दोनों सदनों की अवमानना करने पर दंडित करने का अधिकार भी संसद के पास है ।

इसी प्रकार प्रेस एवं पुस्तक पंजीकरण अधिनियम काफी लंबे समय से लागू है । यह अधिनियम सबसे पहले 1867 में बना था । इसका मकसद यह बताया गया कि इससे इनका नियमन किया जा सके और दोषपूर्ण आचरण करने पर उनके विरुद्ध कार्रवाई करने में सुविधा हो । 1957 में कापीराइट कानून बनाया गया और 1991 में इसमें संशोधन भी किया गया । इसका मकसद लेखकों, कलाकारों को अपनी रचनाओं की नकल करने या चोरी करने से बचाना है । कापीराइट कानून का उल्लंघन करने पर दंडित करने का प्रावधान भी है । इस तरह के कई कानून समय-समय पर बनाए जाते हैं ताकि मीडिया और उससे जुड़े लोगों को उचित कानूनी संरक्षण मिल सके । यहां इन सबको विस्तार से बताने की आवश्यकता नहीं है । सिर्फ यह कहना पर्याप्त है कि आगे हम जनसंचार नीतियों की चर्चा करेंगे । उस समय इन संवैधानिक प्रावधानों को ध्यान में रखना होगा ।

15.6 जनसंचार संबंधी नीतियां

जनसंचार संबंधी नीतियों के निर्माण के कई पहलू होते हैं । इनके वैधानिक प्रावधानों के आधारकी चर्चा हम पहले कर चुके हैं । यहां हम उपर्युक्त बातों को संक्षेप में दोहरा लेते हैं ।

1. संचार की नीतियां बनाने में सरकार की अहम भूमिका होती है । सरकार ही है जो संसद के माध्यम से नए कानून बनाती है, उनको लागू करने के लिए जरूरी संस्थाओं का गठन करती है । इसी प्रकार सरकार जनसंचार से संबंधित गतिविधियों को नियमित और नियंत्रित करने के काम को भी अंजाम देती है ।

2. दूसरा अहम मुद्दा है, संचार से संबंधित आर्थिक मामलों का नियमन करना । इनमें विदेशों से उपकरणों का आयात और निर्यात, उत्पादों पर करों का विधान और जरूरत हो तो वित्तीय मदद का प्रावधान करना भी सरकार के दायित्व में आता है |

3. तीसरा मुद्दा है, ऐसे क्षेत्रों में जिन्हें जरूरी माना जाता है लेकिन जो आर्थिक कारणों से संभव नहीं हो पाते हैं उन्हें संभव बनाने के लिए ठोस कदम उठाना । यदि भारतीय संदर्भ में विचार करें तो रेडियो, टेलीविजन के क्षेत्र में विकास और विस्तार इसीलिए संभव हो सका क्योंकि इसके लिए जरूरी पूंजी और संसाधन सरकार ने जुटाए । संचार का क्षेत्र अत्यधिक पूंजी केंद्रित है । इसलिए यह डर स्वाभाविक होता है कि समाज के कमजोर तबके के अधिकारों और हितों को इससे नुकसान उठाना पड़े । सरकार का यह दायित्व है कि वह इस दिशा में जरूरी कदम उठाए ।

4. जनसंचार की नीतियां बनाने से संबंधित चौथा मुद्दा संचार के क्षेत्र की व्यावसायिक गतिविधियों को नियमित करना। उदाहरण के लिए जबसे केबल के द्वारा टेलीविजन चैनलों का प्रसारण जरूरी हुआ है, यह भी जरूरी हो गया है कि इस बात को नियमित किया जाए कि वे ऐसी फिल्मों का प्रसारण बिना अनुमति के न करे जिनके केबल पर प्रसारण के अधिकार अभी निर्माता ने नहीं बेचे हैं ।

5. जनसंचार के नेटवर्क को इसलिए भी नियमित करना जरूरी है कि उसके माध्यम से भाग 15.5 में गिनाए गए वैधानिक प्रावधानों का उल्लंघन न हो ।

सरकार ने इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए समयसमय पर कई आयोगों और समितियों का गठन किया है जिन्होंने सरकार को विभिन्न तरह की संस्तुतियां की हैं । सरकार इन्हें मानने के लिए बाध्य नहीं है । लेकिन बहुधा इन संस्तुतियों के आधार पर सरकार ने पहले से मौजूद कानूनों में संशोधन किए हैं या कानून बनाए हैं । आइए, इनका संक्षिप्त परिचय प्राप्त करें

प्रेस लॉ इंक्वायरी समिति

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद प्रेस नियमों की समीक्षा करने के लिए सरकार ने प्रेस लॉ इन्कवायरी कमेटी का गठन किया। इसी कारण अनुच्छेद 19(2) में वे प्रतिबंध जोड़े गये जिनका उल्लेख भाग 15.5 में किया गया है । 23 सितंबर 1952 को सरकार ने न्यायमूर्ति जी.एस राजाध्यक्ष की अध्यक्षता में पहले प्रेस आयोग का गठन किया । आयोग ने अपनी रिपोर्ट में प्रेस परिषद् बनाने, प्रेस के लिए आचार संहिता बनाने, प्रेस रजिस्ट्रार की नियुक्ति करने और पत्रकारों के लिए न्यूनतम वेतन आदि तय करने से संबंधित सुझाव दिए । छोटे समाचारपत्रों को संरक्षण और बढ़ावा देने के लिए पी.आर दिवाकर की अध्यक्षता में एक और समिति 'इन्क्वायरी कमेटी ऑफ स्माल न्यूज पेपर्स' का गठन किया गया ।

आमतौर पर सरकारें एक सुस्पष्ट और जनपक्षीय जनसंचार नीति का निर्माण करने की इच्छुक नहीं होतीं । हम जानते हैं कि 1975 में जब तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने आपातकाल की घोषणा की तो उन्होंने प्रेस पर भी कई तरह के नियंत्रण लागू किए । इंदिरा गांधी का मानना था कि 'मुक्त प्रेस द्वारा पैदा किए गए असंतुलन' को ठीक करने के लिप आकाशवाणी और दूरदर्शन का सरकार के नियंत्रण में रहना जरूरी है । यह संयोग नहीं है कि ठीक इसी तरह की बात वर्तमान राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन के एक मंत्री प्रमोद महाजन ने भी दोहराई है । प्रसार भारती की स्वायत्तता के संदर्भ में उठे विवादों पर टिप्पणी करते हुए उनका कहना था कि देशीविदेशी निजी चैनलों के युग में सरकार को अपना पक्ष रखने के लिए दूरदर्शन पर नियंत्रण रखना जरूरी है । इस सब के बावजूद यह सत्य है कि सरकारों को अपनी निष्पक्षता जाहिर करने के लिए कदम उठाने पड़ते हैं ।

ए.के.चंदा समिति

इसी तरह का एक कदम तब उठाया गया जब इंदिरा गांधी केंद्र में सूचना और प्रसारण मंत्री थी । इसकी अध्यक्षत ए.के. चंदा ने की थी 1964 में गठित चंदा समिति ने रेडियो और टेलिविजन

को सरकारी शिकंजे से आजाद रखने के लिए स्वतंत्र निगम बनाने की सिफारिश की । 1970 में इसकी संस्तुतियां संसद के पटल पर रखी गई और इसी के परिणामस्वरूप आकाशवाणी और दूरदर्शन को एक दूसरे से अलग किया गया । यह काम 1976 में किया गया । लेकिन आपातकाल में ही सरकार के नियंत्रण को बढ़ाने के लिए चार प्रमुख समाचार एजेंसियों प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया (पीटीआई), यूनाइटेड न्यूज ऑफ इंडिया (यूएनआई), हिंदुस्तान समाचार और समाचार भारती को मिलाकर एक समाचार एजेंसी 'समाचार' के नाम से बना दी गई थी । इसमें पीटीआई और यूएनआई अंग्रेजी और शेष हिंदी की समाचार एजेंसियां थीं।

कुलदीप नैयर समिति

आपातकाल के बाद जनता पार्टी की सरकार के जमाने में प्रसिद्ध पत्रकार कुलदीप नैयर की अध्यक्षता में एक और समिति मार्च 1977 में गठित की गई । इस समिति ने समाचार एजेंसियों के इस विलय को खत्म करने और अंग्रेजी, हिंदी और भारतीय भाषाओं की अलग समाचार एजेंसियों के अलावा अंतराष्ट्रीय समाचार एजेंसी 'न्यूज इंडिया' बनाने की सिफारिश की । कुलदीप नैयर की इस रिपोर्ट को स्वीकार नहीं किया गया हालांकि 'समाचार' का विघटन हो गया ।

बी.जी.वर्गीज समिति और प्रसार भारती का गठन

जनता पार्टी की सरकार के समय में ही अगस्त 1977 में प्रसिद्ध पत्रकार बी.जी. वर्गीज की अध्यक्षता में एक कार्यदल बनाया गया । इसको यह दायित्व दिया गया कि वह आकाशवाणी और दूरदर्शन को स्वायत्तता देने के बारे में उपाय सुझाए इस कार्यदल ने फरवरी 1978 में अपने सुझाव सरकार को सौंप दिए । इस कार्यदल ने 'आकाश भारती' के नाम से एक स्वतंत्र निगम बनाने का सुझाव दिया । सरकार ने बर्गीज कमेटी की सिफारिशों को पूरी तरह से तो नहीं माना लेकिन तत्कालीन सूचना और प्रसारण मंत्री लालकृष्ण आडवाणी ने 'प्रसार भारती' नाम से एक स्वायत्त निगम बनाने का विधेयक मई 1979 में संसद के पटल पर रखा । वर्गीज समिति की मुख्य सिफारिश जिसके आधार पर इस निगम की स्वतंत्रता की संवैधानिक गारंटी मिलती उसे इस विधेयक में शामिल नहीं किया गया । यह विधेयक जनता पार्टी सरकार के गिर जाने और संसद के असमय भंग हो जाने के कारण समाप्त हो गया ।

इस विधेयक का पुनर्जन्म 1989 में तब हुआ जब राष्ट्रीय मोर्चे की सरकार का गठन हुआ । दिसंबर 1989 में प्रसार भारती विधेयक तत्कालीन सूचना और प्रसारण मंत्री पी. उपेंद्र ने पेश किया । यह विधेयक जनता पार्टी की सरकार के समय पेश किए गए विधेयक से काफी भिन्न था और इसमें कुछ हद तक प्रसार भारती को स्वतंत्रता की संवैधानिक गारंटी प्रदान की गई । काफी बहस मुबाहिसे और कुछ संशोधनों के बाद विधेयक दोनों सदनों द्वारा पारित कर दिया गया । लेकिन इस पर अमल किया जाता इससे पहले ही इस सरकार का भी पतन हो गया । बाद में बनी कांग्रेस सरकार ने फिर इसे ठंडे बस्ते में डाल दिया । 1996 में बनी संयुक्त मोर्चा सरकार ने प्रसार भारती को अमली रूप दिया और प्रसार भारती बोर्ड का गठन किया गया । आज हालांकि प्रसार भारती निगम के तहत ही आकाशवाणी और दूरदर्शन का संचालन हो रहा है लेकिन सच्चाई यह है कि उसकी स्वायत्तता कागजों पर सिमट कर रह गई है ।

पी.सी.जोशी समिति

मीडिया से संबंधित विभिन्न समितियों या कार्यदलों का गठन सिर्फ उससे जुड़ी संस्थाओं की स्वायत्तता से संबंधित ही नहीं रहा है । इनका संबंध उन भूमिकाओं से भी है जिनको पूरा करने का दायित्व इन पर है । जब 1980 में सत्ता में वापसी के बाद इंदिरा गांधी ने दूरदर्शन के विस्तार की योजना बनाई तो उन्होंने 1982 में उसके कार्यक्रमों के लिए 'सॉफ्टवेयर प्लान' तैयार करने के लिए डॉ.पी.सी. जोशी की अध्यक्षता में एक कार्यदल का गठन किया । 1984 में इस कार्यदल ने व्यापक योजना प्रस्तुत की । जोशी समिति ने टेलीविजन के भारतीय व्यक्तित्व होने पर जोर दिया । उसकी सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास के में अहम भूमिका को रेखांकित किया । समिति ने व्यावसायिक प्रसारण से होने वाली आय को जरूरत से ज्यादा महत्व दिए जाने के खतरे के प्रति आगाह किया । जोशी समिति ने भारत के प्रत्येक गांव में सामुदायिक ग्रहीताओं के महत्व को भी रेखांकित किया । उनका मानना है कि इससे दूरदर्शन को आम आदमी तक पहुंचाने में मदद मिलेगी । राष्ट्रीय प्रसारण के महत्व को स्वीकार करते हुए भी जोशी समिति ने प्रादेशिक और क्षेत्रीय प्रसारण की जरूरत पर भी जोर दिया ताकि विभिन्न क्षेत्रों के बीच राष्ट्रीय एकजुटता की भावना को मजबूत किया जा सके, साथ ही स्थानीय प्रतिभाओं को मंच भी मिल सके । जोशी समिति ने इस बात पर बल दिया कि दूरदर्शन में काम करने वाले प्रोफेशनल स्टाफ को अपने काम में पूरी आजादी हासिल हो और उन्हें गैर प्रोफेशनल लोगों की दखलंदाजी से बचाया जाए । उन्होंने समय-समय पर प्रशिक्षण की जरूरत पर भी बल दिया।

पार्थसारथी समिति

सूचना और प्रसारण मंत्रालय की सलाहकार समिति ने जी. पार्थसारथी की अध्यक्षता में आकाशवाणी और दूरदर्शन के लिए समाचार नीति तय करने के लिए 1982 में कुछ दिशा निर्देश तैयार किए थे । इनके अनुसार समाचारों और विचारों के बीच के अंतर को समझा जाना चाहिए । समाचारों की रिपोर्टिंग तथ्यों पर आधारित और वस्तुनिष्ठ हो तथा उसकी पृष्ठभूमि भी बतानी चाहिए ताकि लोग उसे सही परिप्रेक्ष्य में समझ सकें । समाचार लक्षित श्रोताओं को ध्यान में रखकर प्रस्तुत किए जाने चाहिए । प्रत्येक समाचार को समाचार के मानदंडों पर खरा उतरना चाहिए । समाचारों को सामाजिक जिम्मेदारी के ऊंचे मानदंडों पर खरा उतरना चाहिए । समाचारों का मकसद विकास के बारे में जागरूकता बढ़ाने वाला होना चाहिए, देश की उपलब्धियों और समस्याओं को ध्यान में रखकर उन्हें प्रस्तुत किया जाना चाहिए । विकास से तात्पर्य सिर्फ आर्थिक विकास ही नहीं लिया जाना चाहिए बल्कि इसके साथ सामाजिक, प्रौद्योगिकी और सांस्कृतिक विकास को भी लिया जाना चाहिए । समाचार माध्यम की जरूरत के अनुरूप होने चाहिए । उन्हें हमारी संविधान की भावनाओं का पूरा ध्यान रखना चाहिए और संविधान के मौलिक सिद्धांतों और नीति-निर्देशक सिद्धांतों का पालन करना चाहिए । अंतर्राष्ट्रीय समाचारों को भी समुचित जगह और महत्व दिया जाना चाहिए । अंतर्राष्ट्रीय मामलों में शांतिपूर्ण सहअस्तित्व और गुटनिरपेक्षता के सिद्धांतों का पालन करना चाहिए और नस्लवाद, रंगभेद के विरुद्ध लोगों को जागरूक बनाना चाहिए।

जनसंचार के क्षेत्र में कार्यदल और समितियां बनाने का काम कभी भी रुका नहीं । 1986 में गुटनिरपेक्ष देशों के मीडिया फाउंडेशन (नामीडिया) ने दूरदर्शन पर नेशनल फीडबैक हासिल करने के लिए एक परियोजना के अधीन महानगरों में छह गोष्ठियां आयोजित कीं । इनके आधार पर सार्वजनिक ट्रस्ट बनाने का प्रस्ताव किया गया, लेकिन यह प्रस्ताव आगे नहीं बढ़ सका ।

15.7 जनसंचार संबंधी आचार संहिताएं

जनसंचार संबंधी नीतियों से जुड़ा है आचार संहिताओं का सवाल । प्रेस की स्थापना के समय से ही सरकारें कानून बनाकर उसे नियमित और नियंत्रित करने की कोशिश करती रहीं, यह बात हम पहले कह चुके हैं । मीडिया के क्षेत्र में आने वाले नए परिवर्तन नए कानूनी प्रावधानों के लिए मार्ग प्रशस्त करते हैं । इसी के साथ कई तरह की आचार संहिताएं ' हमारे सामने आती हैं जिनके द्वारा मीडिया से जुड़ी संस्थाओं, व्यक्तियों और गतिविधियों को नियमित और नियंत्रित किया जाता है । यहां हम ऐसी कुछ आचार संहिताओं का उल्लेख करेंगे जिनका संबंध प्रेस, रेडियो सिनेमा और टेलीविजन प्रसारण से है ।

भारत में समाचारपत्र, फिल्म, टेलीविजन और रेडियो में प्रसारण के संबंध में आचार संहिताओं निर्माण किया गया है । समाचार संहिताओं का मतलब यह है कि ये माध्यम इन आचार संहिता का पालन करेंगे लेकिन ये उनके लिए बाध्यकारी नहीं होंगे । फिल्मों में प्रमाणन के लिए नियम ही उनके लिए आचार संहिता भी है और प्रदर्शन से पहले उन्हें प्रमाणन बोर्ड से प्रमाणपत्र लेना पड़ता है । इसलिए उनके लिए उनके निर्देशों का पालन करना बाध्यकारी होता है । अन्य माध्यमों में पहले प्रमाणन जरूरी नहीं है, असलिए वे उस रूप में बाध्यकारी नहीं है । लेकिन जहां आचार संहिताओं को वैधानिक प्रावधानों में बदल दिया गया है वहां वे बाध्यकारी हैं और ऐसी स्थिति में उसका उल्लंघन दंडनीय बन जाता है।

प्रेस परिषद अधिनियम और प्रेस संबंधी आचार संहिताएं

1978 के प्रेस परिषद् अधिनियम के तहत भारतीय प्रेस परिषद की स्थापना की गई है । परिषद की स्थापना प्रेस की स्वतंत्रता को बनाए रखने और पत्रकारिता की स्वस्थ परंपरा को बनाए रखने के लिए किया गया । इस परिषद का एक अध्यक्ष और अट्ठाईस सदस्य होते हैं । अध्यक्ष का निर्वाचन एक समिति द्वारा होता है जिसमें राज्यसभा के सभापति, लोकसभा के अध्यक्ष और परिषद के सदस्यों द्वारा चुने हुए एक व्यक्ति से मिलकर बनती है । प्रेस परिषद के अधिनियम में परिषद के उद्देश्यों और कार्यकलापों का भी उल्लेख किया गया है । इसके अनुसार, परिषद समाचार पत्रों तथा समाचार एजेंसियों की स्वतंत्रता बनाए रखने में उनकी सहायता करेगी । पत्रकारों सहित उन सभी के लिए आचार संहिता का निर्माण करेगी । यह सुनिश्चित करना भी परिषद का काम होगा कि वह समाचार पत्रों, एजेंसियों और पत्रकारों की ओर से लोक रुचि के उच्च स्तर बनाए रखे जाएं और नागरिक अधिकारों और उत्तरदायित्व दोनों की सम्यक् भावना का पोषण करेगा। इस पेशे में लगे लोगों में उत्तरदायित्व और लोक सेवा की भावना प्रोत्साहित करेगा । ऐसी किसी भी बात पर जिससे लोकहित और लोक महत्व के समाचार के प्रदान और प्रसार का निर्बन्धन संभाव्य हो उस पर विचार करते रहना । समाचार पत्र और समाचार एजेंसियों को किसी विदेशी स्रोत से सहायता मिलती है तो उस पर विचार करना भी इसके उद्देश्यों में शामिल है । वैसे तो प्रेस परिषद को कोई दंडात्मक अधिकार नहीं दिए गए हैं लेकिन वह परिषद के उद्देश्यों और आचार संहिताओ का उल्लंघन करने पर निंदा करने का अधिकार है ।

आकाशवाणी संबंधी आचार संहिता

आकाशवाणी के लिए जो नौसूत्री आचार संहिता अशोक मित्रा की पहल पर लागू की गई थी, उसके अनुसार आकाशवाणी से प्रसारित होनेवाले समाचारों और अन्य कार्यक्रमों में मित्र राष्ट्रों की आलोचना, धर्म और संप्रदाय पर प्रहार, अश्लील और असम्मानजनक बातें, न्यायालय की मानहानि,

हिंसा को बढ़ावा देने या कानून व्यवस्था के विरुद्ध कही गई बातें, राष्ट्रपति, राज्यपाल अथवा न्यायपालिका की निष्ठा पर शक, किसी राजनीतिक दल का नाम लेकर प्रहार, किसी राज्य विशेष की कड़ी आलोचना, संविधान के प्रति असम्मान और हिंसा द्वारा सत्ता परिवर्तन की वकालत आदि पर रोक लगाई गई थी । ये बाते देखने में तो बिल्कुल साफ है लेकिन व्यवहार में यह तय करना बहुत मुश्किल है कि कौन-सी बात अश्लील और अपमान जनक है और कौन सी सांप्रदायिक है । इसी तरह की आचार संहिता उन विज्ञापनों के लिए भी बनाई गई है जो आकाशवाणी पर प्रसारित होते हैं । इनमें यह भी शामिल है कि आकाशवाणी की यह आचार संहिता दूरदर्शन के चैनलों के लिए भी लागू की गई है । लेकिन इन सब उत्पादों का विज्ञापन पर कोई रोक नहीं है । इस प्रकार जो विज्ञापन दूरदर्शन और आकाशवाणी पर नहीं आता उसे लोग अखबारों में और केबल के जरिए दूसरे चैनलों पर लगातार देखते हैं। इस तरह यह संहिता लोगों को नशीली चीजों से दूर रखने का काम तो नहीं कर पाती लेकिन आकाशवाणी और दूरदर्शन जैसे सरकारी माध्यमों को इन विज्ञापनों से मिलने वाले राजस्व से वंचित करने में जरूरी कामयाब हो जाती है ।

विज्ञापन संबंधी आचार संहिताएं

विज्ञापन संबंधित आचार संहिता में यह भी साफ तौर पर लिखा है कि 'विज्ञापन में ऐसा कुछ न हो जिससे लोग यह विश्वास करें कि वस्तु में ऐसा कोई चमत्कारी तत्व अथवा दैविक शक्ति और अलौकिक गुण हैं जिसे सिद्ध करना संभव नहीं है ।' इस संबंध में 1954 का एक अधिनियम भी है जिसमें दंड तक का प्रावधान है । लेकिन क्या यह सच्चाई नहीं है कि ज्यादातर वस्तुओं के विज्ञापनों में उनके गुणों को अतिरंजित रूप में पेश किया जाता है? अतिरंजित रूप से पेश किया जाना अलौकिक है या दैवीय इसे तय करने का पैमाना क्या है । आचार संहिता को राजनीति के क्षेत्र में लागू करना भी सरल नहीं होता । उदाहरण के लिए चुनावों के दौरान किये जाने वाले विभिन्न सर्वेक्षणों पर प्रतिबंध । भारत में चुनाव आयोग ने 1999 के आम चुनावों के दौरान एक्सीट पोल पर यह कहते हुए प्रतिबंध लगा दिया था कि एक्जिट पोल से अगले चरण के चुनावों पर नकारात्मक असर पड़ता है । यह मतदाताओं को पहले से पूर्वाग्रहग्रस्त बनाने का प्रयत्न है। चुनाव आयोग के इस फैसले को सुप्रीम कोर्ट की संविधान पीठ ने यह कहते हुए अस्वीकार कर दिया था कि क्या ऐसा प्रतिबंध लगाना चुनाव आयोग के अधिकार के क्षेत्र में है? जाहिर है कि अपनी बात कहने के अधिकार या जानने के अधिकार को प्रतिबंधित करने का अधिकार चुनाव आयोग के पास नहीं है । लेकिन क्या जानने के अधिकार में ऐसी भविष्यवाणियां भी शामिल हैं जो नमूनों के आधार पर किये गये सर्वेक्षणों पर टिकी हों?

केबल टीवी नेटवर्क अधिनियम

पहले टेलीविजन और बाद में केबल टेलीविजन नेटवर्क के विस्तार के साथ उनके नियमन के लिए अधिनियम बनाने की जरूरत हुई । सरकार ने इसके लिए केबल टीवी नेटवर्क (नियमन) अधिनियम, 1995 बनाया । इस अधिनियम में सरकार ने ऐसे कार्यक्रम प्रसारित करने को आचार संहिता का उल्लंघन माना जो सुरुचिपूर्ण और सभ्य आचरण के विरुद्ध हो, जिसमें मित्र देशों की आलोचना की गई हो, किसी धर्म और संप्रदाय की आलोचना या निंदा की गई हो या उनके प्रति तिरस्कार की भावना व्यक्त की गई हो । जिसमें सांप्रदायिकता फैलाने की कोशिश हो । ऐसे कार्यक्रम की भी मनाही की गई जो हिंसा भड़काते हों, जिससे कानून व्यवस्था के भंग होने का खतरा हो या जो राष्ट्रविरोधी विचारधारा को प्रोत्साहित करता हो । जिसमें राष्ट्रपति और न्यायपालिका की निष्ठा पर संदेह व्यक्त किया गया हो

। ऐसे कार्यक्रम भी जो अंधविश्वास फैलाते हों, जो महिलाओं की छवि को धूमिल करता हो, उनकी देह या किसी अंग को अश्लील ढंग से व्यक्त करता हो। इस आचार संहिता में किसी नस्ल, भाषा या क्षेत्र विशेष के रहन-सहन और तौर तरीके का मजाक उड़ाया गया हो । इसके अलावा आचार संहिता में फिल्मों के लिए जिस तरह के कार्यक्रम को प्रोत्साहित करने की बात कही गई है उन्हें टेलीविजन पर भी लागू किया गया है |

फिल्म प्रमाणन संबंधी सुप्रीम कोर्ट के निर्देश

जैसा कि हम पहले उल्लेख कर चुके हैं, 1989 में सुप्रीम कोर्ट ने फिल्म प्रमाणन के लिए कुछ निर्देश जारी किए थे। इन निर्देशों में कहा गया कि फिल्म माध्यम सामाजिक स्तर और मूल्यों के प्रति उत्तरदायी बना रहे । कलात्मक अभिव्यक्ति और सृजनात्मक स्वतंत्रता अनावश्यक रूप से दमित न हो । प्रमाणन सामाजिक परिवर्तन के अनुरूप हो । फिल्में स्वच्छ और स्वास्थ्य मनोरंजन करे और फिल्मों में यथासंभव सौंदर्यबोध और सिनेमाई मानदंडों के अनुरूप हो । इसके साथ ही बहुत से नकारात्मक बातों को फिल्मों को प्रस्तुत किये जाने से रोकने के निर्देश दिये । मसलन, समाजविरोधी गतिविधियों को न्यायोचित ठहराने वाली, उन्हें बढ़ावा देने वाली और उन्हें महिमामंडित करने वाली फिल्मों को प्रमाणपत्र न देने के निर्देश दिये गये । लेकिन हिंसा पर आधारित व्यावसायिक फिल्में जिस प्रतिशोध के सिद्धांत पर टिकी होती है आमतौर पर वे न सिर्फ उन्हें न्यायोचित ठहराती है बल्कि उन्हें महिमामंडित भी ठहराती है ।

इसी तरह इन निर्देशों में यह भी लिखा है कि महिलाओं को नीचा दिखाने वाले या उनको अपमानित करने वाले दृश्यों को न दिखाया जाए । लेकिन शायद ही कोई ऐसी व्यावसायिक फिल्म हो जो औरतों को ऐसी वस्तु की तरह न पेश करती हो जिसमें मनुष्य के रूप में उसका अपमान निहित न हो, जिनमें यौन और हिंसा पर आधारित कथानक न हों और जिन दृश्यों का देखना या संवादों का सुनना बच्चों के कोमल और अपरिपक्व मस्तिष्क के लिए उपयुक्त न माना जाता हो। आमतौर पर उन फिल्मों को 'वयस्कों के लिए' का प्रमाणपत्र मिल जाता है । समस्या तब आती है जब इस बात को परिभाषित करना होता है कि कौन-सा दृश्य अश्लील या कौन-से दृश्य में हिंसा का अतिशय चित्रण किया गया है और कहां हिंसा को महिमामंडित किया गया है और कहां नारी का अपमान किया गया है । कई बार ऐसा प्रतीत होता है कि सेंसर बोर्ड अत्यधिक कठोर हो गया है और कई बार उसके द्वारा रोकी गई फिल्मी को अदालतों ने बिना किसी काट-छांट के प्रदर्शन की अनुमति दे दी है । मसलन, शेखर कपूर की फिल्म 'बेंडिट क्वीन' को सेंसर बोर्ड ने प्रदर्शन की अनुमति देने से इन्कार कर दिया था, लेकिन सुप्रीम कोर्ट ने बिना किसी काट-छांट के दिखाने की अनुमति प्रदान कर दी थी |

इस प्रकार जनसंचार के लगभग सभी क्षेत्रों में कानूनी और सुझावपरक नीतियां और आचार संहिताएं बनी हैं । लेकिन इन सबके बावजूद मीडिया को लेकर सरकार और जनता के बची विवाद बना रहता है । जब भी सरकारें संकट में पड़ती हैं तो वह सबसे पहले मीडिया को ही घेरने की कोशिश करती हैं । समाचार पर बनाई जाने वाली सभी नीतियों को इस प्ररिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए । आगे, हम जनसंचार की नीतियों के वैश्विक संदर्भ के बारे में संक्षिप्त टिप्पणी करेंगे।

15.8 जनसंचार से संबंधित नीतियों का वैश्विक संदर्भ

जनसंचार की नीतियों को लेकर लगातार विमर्श चलता रहा है । दुनिया में संचार माध्यमों को बंटवारा विषमतापूर्ण है । इस क्षेत्र में विकसित देशों खासकर अमरीका का वर्चस्व कायम है और विकासशील देश इस मामले में काफी पिछड़े हुए हैं । आज इस क्षेत्र में बहुराष्ट्रीय कंपनियों का प्रभुत्व कायम हो रहा है । वे अपने व्यवसाय के विस्तार के लिए नई विश्व सूचना और संचार व्यवस्था की बात कर रहे हैं । इसका मतलब सिर्फ यह है कि विकसित देशों को तीसरी दुनिया में अपना सूचना और संचार साम्राज्य स्थापित करने का अधिकार दिया जाए । इस बात को वे जानने के अधिकार और मानवाधिकार की आड़ में उठाते हैं । वे इस बात का प्रचार करते रहे हैं कि राज्य इन दोनों मामलों में विश्वास योग्य नहीं है । राज्य की प्रवृत्ति लोगों के अधिकारों को कुचलने की होती है । खासतौर पर तीसरी दुनिया के देशों में जहां विकसित देशों की तरह लोकतंत्र उतना मजबूत नहीं है । लेकिन उनका वास्तविक मकसद सिर्फ यह होता है कि सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में वे अपने व्यापारिक हितों का विस्तार कर सकें । साथ ही साथ वे इसके माध्यम से वहां की जनता के बीच विचारधारात्मक प्रभाव का भी विस्तार कर सकें । ऐसा नहीं है कि तीसरी दुनिया के देश साम्राज्यवादी देशों के इस वास्तविक इरादों से अनभिज्ञ थे या हैं । सत्तर के दशक में तीसरी दुनिया द्वारा इसका प्रबल विरोध निर्गुट देशों के मंच से किया जाता रहा । उस समय तीसरी दुनिया के देशों का मानना था कि राज्य एकमात्र ऐसा निकाय है जो ताकतवर भूमंडलीय निगमों और संस्थानों के हितों के विरुद्ध जनता की वास्तविक इच्छा का प्रतिनिधित्व करता है ।

यह निर्गुट देशों के दबाव का ही परिणाम था कि 1978 में यूनेस्को ने जन माध्यम घोषणा स्वीकार की । 1980 में यूनेस्को ने प्रसिद्ध मेकब्राइड रिपोर्ट को जारी किया जिसमें तीसरी दुनिया के नजरिए को स्वीकार किया गया था । लेकिन अस्सी के दशक के उत्तरार्द्ध में जब निर्गुट देशों का आंदोलन कमजोर पड़ने लगा और जब तीसरी दुनिया के देशों ने आर्थिक विकास के नाम पर साम्राज्यवाद को रोकना नामुमकिन हो गया । नब्बे के दशक में यह विरोध राज्यों के माध्यमों से तो लगभग खत्म हो गया । भारत जैसे देशों में सूचना और संचार के क्षेत्रों में भूमंडलीय निगमों और संस्थाओं के विस्तार को इसी संदर्भ में देखना होगा ।

15.9 सारांश

इस इकाई में आपने भारत में जनसंचार नीति के बारे में अध्ययन किया है | इस इकाई में हमने इस बात पर विचार किया है कि जनसंचार के लिए नीतियों, कानूनों और आचार संहिताओं की जरुरत क्यों होतीं हैं | जनसंचार के विभिन्न माध्यमों की खोज होने और उनका विस्तार होने के कारण सरकारों को उनका नियमन और नियत्रंण करने के लिए कानूनी प्रावधानों की व्यवस्था करनी पड़ती है । यह इसलिए ताकि इन माध्यमों के कारण लोगों और विभिन्न समुदायों के बीच किसी तरह का वैमनस्य न फैले | लोगों को अपने देश और समाज के बाड़े में सही जानकारी मिले | इसी प्रकार इन जनसंचार माध्यमों की जरुरत का अनुचित व्यवसायिक लाभ न उठाए और उसकी पहुँच ज्यादा से ज्यादा लोगों तक बन सके |

जनसंचार के माध्यमों में पत्र-पत्रिकाएं, रेडियो, फिल्म और टेलीविजन शामिल हैं | इन माध्यमों का मुख्य माम सूचना, शिक्षा और मनोरंजन प्रेषित करना है | लेकिन देखा यही गया है कि माध्यम

इन कामों को जनता के हित के अनुरूप ही नहीं करते बल्कि समाज के निहित स्वार्थो के हित में भी करते हैं | इसी प्रकार ये माध्यम मनोरंजन के नाम पर विकृत विचारों और प्रवृत्तियों को फैलाते हैं | सरकारें इन माध्यमों का उपयोग अपने हित में करती हैं | इन बातों का ध्यान में रखकर भी संचार नीतियों को बनाने की जरुरत होती है । पत्र-पत्रिकाओं के लिए प्रेस परिषद की स्थापना की गई और उसके द्वारा समाचार पत्रों को विभिन्न तरह की आचार संहिताओं के दायरे में रखने की कोशिश की जाती है | पुस्तक के प्रकाशन, लेखकों के सर्वाधिकार आदि के बारे में भी कानून बने | इसी तरह रेडियो और टेलीविजन पर प्रसारित होने वाले समाचारों के लिए नीतियों का निर्माण किया गया | आज जब केबल टेलीविजन के कारण दुनिया भर के चैनलों को टीवी पर देखा जा सकता है यह जरुरी हो जाता है कि टीवी पर प्रसारित होने वाले चैनलों और कार्यक्रमों के नियमन की व्यवस्था की जाए | इसी बात को ध्यान में रखकर केबल नेटवर्क अधिनियम बनाया गया |

जनसंचार नीतियों की चर्चा करते हुए इस इकाई में वैधानिक प्रावधानों और आचार संहिताओं की सीमाओं का भी उल्लेख किया गया है ताकि विद्यार्थी इस बात को भी समझ सके कि क्यों इन नीतियों में समय-समय पर बदलाव होते हैं या होने की जरुरत महसूस होती है | इन सभी बातों के प्ररिप्रेक्ष्य में आप इस इकाई को समझ सकेंगे ऐसी आशा है |

15.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

रेमंड विलियम्स, संचार माध्यमों का वर्ग चरित्र, ग्रंथ शिल्पी, लक्ष्मी नगर, दिल्ली- 110092

पूरन चंद्र जोशी, संस्कृति, विकास और संचार क्रांति, ग्रंथ शिल्पी, लक्ष्मी नगर, दिल्ली- 110092

जवरीमल्ल पारख, जनसंचार माध्यमों का वैचारिक परिप्रेक्ष्य, ग्रंथ शिल्पी, लक्ष्मी नगर, दिल्ली- 110092

बृजमोहन गुप्त, जनसंचार विविध आयाम, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली- 110002

डॉ. बसंतीलाल बाबेल, पत्रकारिता एवं प्रेस विधि, सुविधा लॉ हाउस, भोपाल

मेनी वाइसेज, वन वर्ल्ड, युनेस्को रिपोर्ट, यूनेस्को प्रकाशन

Denis mcouail-media policy, Sage publication, London

15.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. जनसंचार की नीतियों की जरूरत क्यों होती है, सोदाहरण समझाइए ।
2. भारत में जनसंचार नीति का संवैधानिक आधार क्या है, बताइए ।
3. प्रेस संबंधी विभिन्न वैधानिक प्रावधानों और नीतियों का उल्लेख कीजिए ।
4. इलेक्ट्रानिक माध्यमों से संबंधित विभिन्न नीतियों और आचार संहिताओं का परिचय दीजिए।
5. 'भारत की जनसंचार नीति' पर एक आलोचनात्मक लेख लिखिए ।
6. संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिए (कोई दो)
    1. ए.के. चंदा समिति
    2. बी.जी. वर्गीज समिति
    3. पी.सी. जोशी समिति

4. पार्थसारथी समिति

विश्वविद्यालय द्वारा संचालित पाठ्यक्रमों की सूची

	पाठ्यक्रम का नाम	अवधि
1.	स्नातक उपाधि प्रारम्भिक पाठ्यक्रम	6 माह
2.	भोजन एवं पोषण में सर्टिफिकेट	6 माह
3.	कम्प्यूटर ज्ञान एवं प्रशिक्षण का प्रारम्भिक पाठ्यक्रम	6 माह
4.	सर्टिफिकेट इन कम्प्यूटिंग	6 माह
5.	पंचायती राज प्रोजेक्ट में प्रमाण-पत्र	6 माह
6.	संस्कृति एवं पर्यटन में प्रमाण-पत्र	6 माह
7.	महिलाओं में वैद्यानिक बोध में प्रमाण-पत्र	6 माह
8.	राजस्थानी भाषा एवं संस्कृति में प्रमाण-पत्र	6 माह
9.	बी.ए.एफ./बी.सी.एफ. (त्रिवर्षीय पाठ्यक्रम)	1 वर्ष
10.	एम.ए.(अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान, इतिहास, हिन्दी)	2 वर्ष
11.	एम.बी.ए.	3 वर्ष
12.	पी.जी.डी.एच.आर.एम.	1 वर्ष
13.	पी.जी.डी.एफ.एम.	1 वर्ष
14.	पी.जी.डी.एम.एम.	1 वर्ष
15.	पी.जी.डी.एल.एल.	1 वर्ष
16.	टी.एच.एम.	1 वर्ष
17.	डी.एन.एच.ई.	1 वर्ष
18.	डी.सी.ओ.	1 वर्ष
19.	डी.एल.एस.	1 वर्ष
20.	डी.सी.सी.टी.	18 माह
21.	बी.जे.(एम.सी.)	1 वर्ष
22.	एम.जे.(एम.सी.)	2 वर्ष
23.	बी.लिब.	1 वर्ष
24.	पर्यावरण विज्ञान में स्नातकोत्तर डिप्लोमा	1 वर्ष
25.	बी.एड.	2 वर्ष
26.	पी.एच.डी.	3 वर्ष
27.	पी.जी.डी.ई.एस.डी.	1 वर्ष